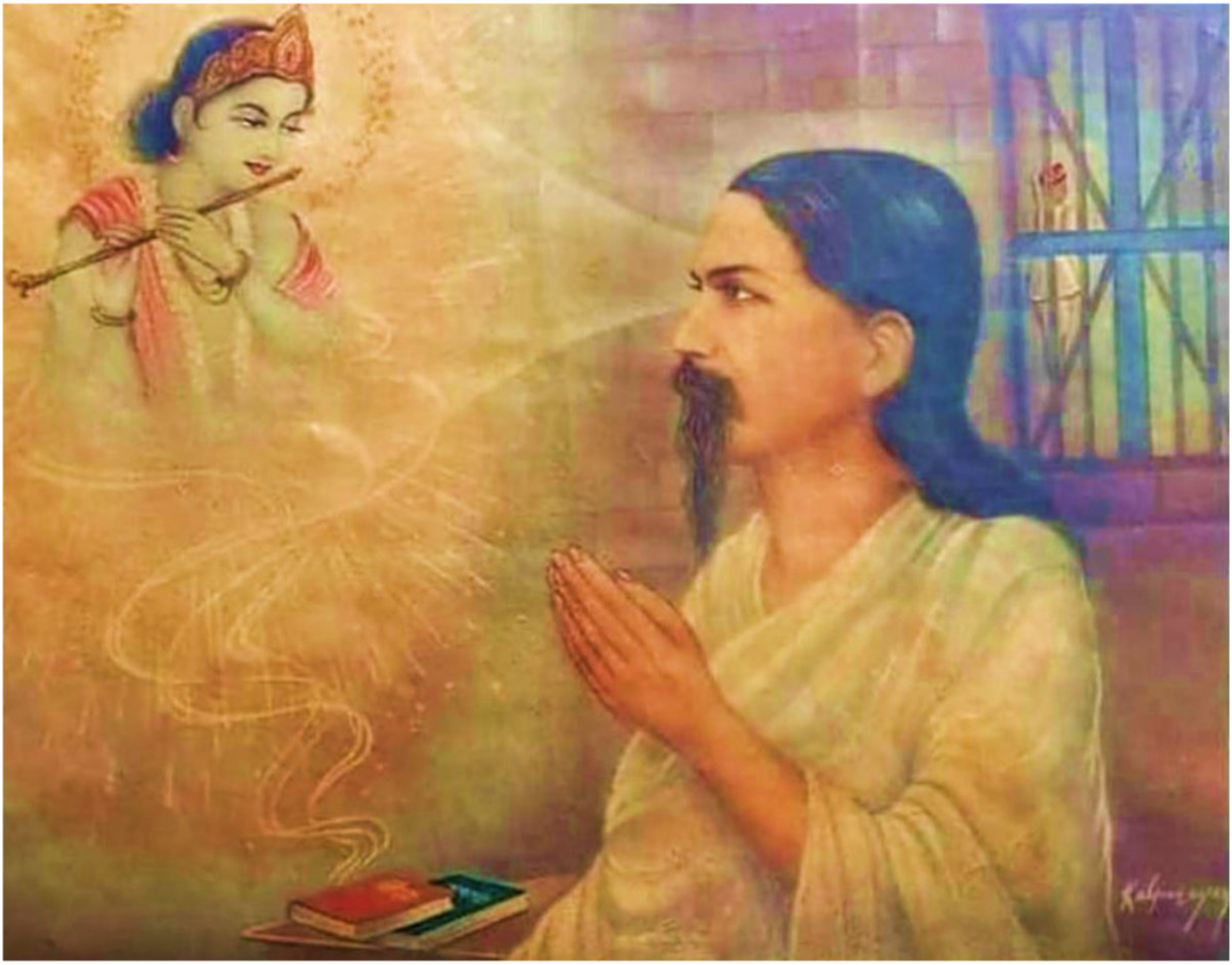

श्री अरविन्द कर्मधारा

नवम्बर - दिसम्बर

श्रीअरविन्द आश्रम
दिल्ली शाखा का मुखपत्र
(नवम्बर - दिसम्बर 2023)
अंक - 6
संस्थापक
श्री सुरेन्द्रनाथ जौहर 'फकीर'
सम्पादन - अपर्णा रॉय
विशेष परामर्शसमिति
सुश्री तारा जौहर, विजया भारती
ऑनलाइन पब्लिकेशन
ऑफ
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली शाखा
(निःशुल्क उपलब्ध)
कृपया सब्सक्राइब करें-
saakarmdhara@rediffmail.com
कार्यालय
श्रीअरविन्द आश्रम, दिल्ली-शाखा
श्रीअरविन्द मार्ग, नई दिल्ली-110016
दूरभाषः 26567863, 26524810
आश्रम वैबसाइट
(www.sriaurobindoashram.net)

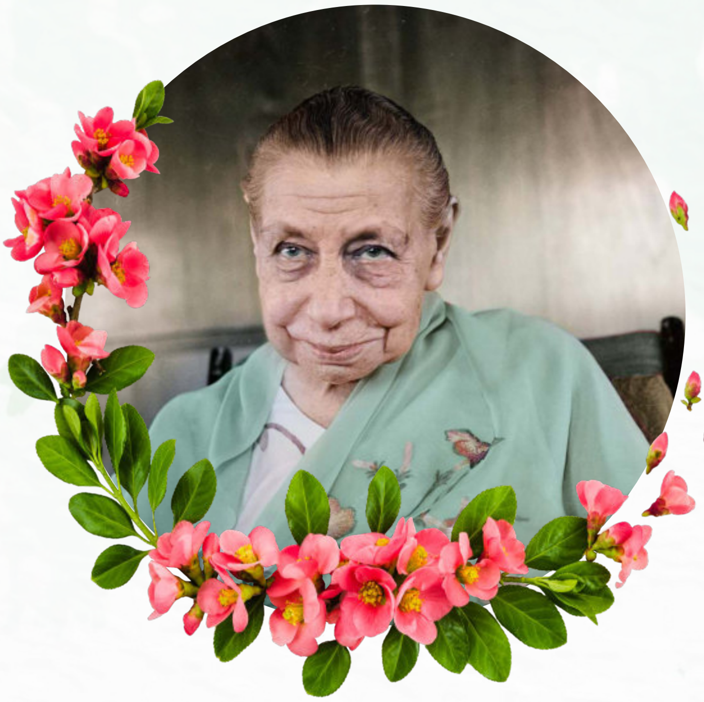

प्रार्थनाएँ

हे प्रभु !
गत रात्रि तुम्हारे पथ-प्रदर्शन के प्रति
एक अत्यन्त प्रभावी एवं दृढ़ अनुभूति हुई आत्म–समर्पण की,
और मैं समझ गयी कि हम जो कुछ जानना चाहते हैं, ।
वह अवश्य सही समय पर हम कर लेते हैं अनुभूत।
तुम्हारे प्रकाश के प्रति हमारा मन,
जितना अधिक होता है उन्मुख, सजग, नीरव और शान्त,
उतना ही अधिक यथेष्ट एवं स्पष्ट, अभिव्यक्त होता है प्रकाश
हे नाथ ! तुम्हारी सर्वशक्तिमयता अनन्त है।
वे सब लोग जो हर कहीं और हर वस्तु में
तुम्हें देख लेते हें, कर सकते हैं तुम्हारी उपस्थिति के दर्शन
उनके लिये वही सब कुछ होता है घटित, जो तुम चाहते हो।
प्रभु ! मुझमें अब कोई भय, विफलता और विक्षोभ नहीं है शेष
बस एक विशुद्ध आत्म-तल्लीनता है,
बस एक विश्वास है, एक अविचल शान्ति है...,

- श्रीमाँ
ध्यान और प्रार्थनाएँ

विषय-सूची

- सम्पादकीय 4
- सावित्री प्रतीकात्मक उषापर्व 1 सर्ग 1 8
- एक देव की मृत्यु 11
- श्रीअरविंद से अंतरंग वार्ता 12
- क्या भारत सभ्य है? - 1 16
- चोरी की व्यापकता 20
- ईश्वर 24
- कृष्ण 25
- अनागत के पथ पर – २ 26
- श्रीअरविन्द 32
- प्रगति 33
- आश्रम-गतिविधियाँ 39

सम्पादकीय

प्रिया पाठकों,

सन 2023 में श्री अरविंद कर्मधारा का यह अंतिम अंक है। विगत दो वर्षों से हम सभी श्री अरविंद की 150 सी जयंती के प्रति अपने भवोद्गार सोत्साह पूर्वक मनाते रहे और हमने विविध गतिविधियों ,गोष्ठियों, सम्मेलनों आदि के माध्यम से परस्पर एक दूसरे के साथ मिलकर पूर्णयोग के पथ से संबंधित जानकारी और जागरूकता के प्रसार का अनुभव किया । श्री अरविंद का जन्मोत्सव तथा उनकी महासमाधि जैसे अवसर हमें स्मरण कराते हैं कि हमें इस पथ पर अपने कदम निरंतर और सचेतन रूप से बढ़ाते रहना है। श्री अरविंद ने हमे पूर्णयोग का मार्ग दिखलाया है अतः हमें ध्यान रखना होगा कि हमें सजग रहना है कि अपना यह भौतिक जीवन को दिव्य जीवन में रूपांतरित करने के लिए हमें सर्वांगीण रूप से तत्पर होना होगा, अर्थात हमारा मन प्राण और शरीर तीनों ही सत्ताएं पूर्ण सामंजस्य और एक तत्व के साथ हमारे चैत्य के अनुशासन को स्वीकार कर सकें और अपना सब कुछ ईश्वर का मान कर जीने का अभ्यास करें । कोई भी अंग, कोई भी सत्ता, हमारा कोई भी अंश स्वयं को ईश्वरीय सत्ता से अलग होने का हठ ना करे। उसके बाद कोई भी शक्ति हमारे जीवन को दिव्य जीवन में रूपांतरित होने से नहीं रोक सकेगी। जैसे ही हम अपना सब कुछ ईश्वर का मान लेते हैं तो ईश्वर की कृपा हमारे अंग-प्रत्यंग ,हमारी प्रत्येक क्रिया को दिव्य चेतना से भर देती है, एक अद्भुत आत्मानुशासन ,आत्मावलोकन हमारे अंदर विकसित होने लगता है। स्मरण आती है एक कथा जिसमें लेखक कहते हैं ----

कल दोपहर मैं बैंक में गया था । वहाँ एक बुजुर्ग भी अपने काम से आये थे। वहाँ वह कुछ ढूंढ रहे थे। मुझे लगा शायद उन्हें पेन चाहिये। इसलिये उनसे पूछा तो वह बोले "बिमारी के कारण मेरे हाथ कांप रहे हैं और मुझे पैसे निकालने की स्लीप भरनी है उसीके लिये मैं देख रहा हूँ कि कोई मदद कर दे।"

मैं बोला "आपको कोई हर्ज न हो तो मैं आपकी स्लिप भर देता हूँ।"
उन्होंने मुझे स्लिप भरने की अनुमति दे दी। मैंने उनसे पुछकर स्लिप भर दी।
रकम निकाल कर उन्होंने मुझसे पैसे गिनने को कहा, मैंने पैसे भी गिन दिये।
हम दोनों एक साथ ही बैंक से बाहर आये तो, बोले, सॉरी तुम्हें थोड़ा कष्ट तो होगा परन्तु मुझे रिक्शा करवा दो, इस भरी दोपहरी में रिक्शा मिलना बड़ा कष्टकारी होता है!
मैं बोला, मुझे भी उसी तरफ जाना है, मैं आपको कार से घर छोड़ देता हूँ !
वह तैयार हो गये। हम उनके घर पहुँचे ! घर क्या बंगला कह सकते हैं। घर में उनकी वृद्धा पत्नी थीं। वह थोड़ी डर गईं कि इनको कुछ हो तो नहीं गया, जिससे उन्हें छोड़ने एक अपरिचित व्यक्ति घर

तक आया है। उन्होंने पत्नी के चेहरे पर आये भावों को पढ़कर कहा कि चिंता की कोई बात नहीं, यह मुझे छोड़ने आये हैं!
फिर बातचीत में वह बोले - इस भगवान के घर में हम दोनों पति-पत्नी ही रहते हैं। हमारे बच्चे तो विदेश में रहते हैं।
मैंने जब उन्हें _भगवान के घर_के बारे में पूछा तो उन्होंने बताया कि हमारे परिवार में भगवान का घर कहने की पुरानी परंपरा है! इसके पीछे की भावना है कि यह घर भगवान का है और हम उस घर में रहते हैं।जबकि लोग कहते हैं कि घर हमारा है और भगवान हमारे घर में रहते हैं।

मैंने विचार किया कि दोनों कथनों में कितना अंतर है ! तदुपरांत वह बोले...
भगवान का घर बोला तो अपने से कोई नकारात्मक कार्य नहीं होते और हम हमेशा सद्विचारों से भरे रहते हैं।
बाद में मजाकिया लहजे में बोले ...,
लोग मृत्यु उपरान्त भगवान के घर जाते हैं परन्तु हम तो जीते जी ही भगवान के घर का आनंद ले रहे हैं !
यह संस्मरण सचमुच कितना प्रेरक है, अनुकरणीय है। हम अपना घर ही ईश्वर का घर बना लें तो उसमें बीतने वाला हमारा जीवन क्या सर्वांगीण रूप से सहज ही ईश्वरमय जीवन नहीं हो जाएगा? उसके बाद हमारे अंदर अहं का स्थान कहां बचता है ? हमारा अहम् भी क्या ईश्वर का नहीं बन जाएगा ? सारी समस्या ही तो इस अहम् की है जो समय-समय पर, अलग-अलग रूप में हमारे अंदर घुस आता है । इतना मोहक, इतना सम्मानित और आकर्षक रूप लेकर हमारे अंदर प्राय: घुस आने वाले इस अहम् के कारण हम अक्सर ही अपने जीवन को अहंकार में बना डालते हैं । श्रीमां ने हमें सात्विक अहम् से भी बचने की राय दी है जो अक्सर हमारी भक्ति, हमारी आस्था और विश्वास में भी समाविष्ट हो जाता है । वह हमारी आँखों पर ऐसा पर्दा डाल देता है कि हम समझ ही नहीं पाते कि उसने हमें कब अहम्-ग्रस्त कर लिया । इस अहंकार से बचना योग-पथ की गतिशीलता के लिए अनिवार्य ही नहीं अपरिहार्य है । स्मरण हो आती है एक घटना.....,

एक बार की बात है, जगत गुरु शंकराचार्य कांची कामकोटि जी से प्रश्नोत्तरी कार्यक्रम चल रहा था। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया कि हम भगवान को भोग क्यों लगाते हैं ?
हम जो कुछ भी भगवान को चढ़ाते हैं, उसमें से भगवान क्या खाते हैं, क्या पीते हैं ?
क्या हमारे चढ़ाए हुए पदार्थ के रूप-रंग-स्वाद या मात्रा में कोई परिवर्तन होता है ?
यदि नहीं, तो हम यह कर्म क्यों करते हैं। क्या यह पाखंड नहीं है ?
यदि यह पाखंड है तो हम भोग लगाने का पाखंड क्यों करें ?
सभी श्रोताओं की जिज्ञासा बढ़ गई थी कि शायद प्रश्नकर्ता ने आज जगद्गुरु शंकराचार्य जी को बुरी तरह घेर लिया है । देखें, वे क्या उत्तर देते हैं।

किंतु जगद्गुरु शंकराचार्य जी तनिक भी विचलित नहीं हुए। बड़े ही शांत चित्त से उन्होंने उत्तर देना शुरू किया।
उन्होंने कहा,
यह समझने की बात है कि जब हम प्रभु को भोग लगाते हैं तो वह उसमें से क्या ग्रहण करते हैं ।

मान लीजिए कि आप लड्डू लेकर भगवान को भोग चढ़ाने मंदिर जा रहे हैं और रास्ते में आपका जानने वाला कोई मिलता है और पूछता है यह क्या है ?
तब आप उसे बताते हैं कि यह लड्डू है।
फिर वह पूछता है कि किसका है ?
तब आप कहते हैं कि यह मेरा है ।
फिर जब आप वही मिष्ठान्न प्रभु के श्री चरणों में रख कर उन्हें समर्पित कर देते हैं और उसे लेकर घर को चलते हैं तब फिर आपको जानने वाला कोई दूसरा मिलता है और वह पूछता है कि यह क्या है ?
तब आप कहते हैं कि यह प्रसाद है ।
फिर वह पूछता है कि किसका है ?
तब आप कहते हैं कि यह हनुमान जी का है ।
अब समझने वाली बात यह है कि लड्डू वही है ।
उसके रंग-रूप-स्वाद या परिमाण में कोई अंतर नहीं पड़ता है, तो प्रभु ने उसमें से क्या ग्रहण किया कि उसका नाम बदल गया !
वास्तव में प्रभु ने मनुष्य के अहंकार को हर लिया ।
यह मेरा है का जो भाव था, अहंकार था, प्रभु के चरणों में समर्पित करते ही उसका हरण हो गया ।
प्रभु को भोग लगाने से मनुष्य विनीत स्वभाव का बनता है, शीलवान होता है । अहंकार रहित स्वच्छ और निर्मल चित्त मन का बनता है ।
इसलिए इसे पाखंड नहीं कहा जा सकता है ।
यह मनोविज्ञान है ।
कोटि-कोटि नमन है देश के संतों को जो हमें अज्ञानता से दूर ले जाते हैं और हमें ज्ञान के प्रकाश से प्रकाशित करते हैं। हमें स्मरण रखना होगा कि श्रीअरविंद के योग-पथ का अनुसरण करते समय अपने अहम् का परित्याग सर्वांगीण रूप से करना है । अपना जीवन सर्वांगीण और समग्र रूप से ईश्वरमय बनाना है तो उसे ईश्वर को ही समर्पित कर देना होगा । कहने की बात नहीं कि यह समर्पण भी सर्वांगीण होना चाहिए ।
साथियों ! पत्रिका के नए अंक के साथ नव वर्ष के लिए आप सबके प्रति मेरी हार्दिक शुभकामनाएं और शुभेच्छाएं ....

----अपर्णा

सावित्री
प्रतीकात्मक उषा
पर्व 1 सर्ग 1

श्रीअरविंद

सावित्री के आरंभ के प्रथम सर्ग का विषय है सत्यवान् की मृत्यु के दिन का प्रभात। सृष्टि का आदि प्रभात, व्यष्टि और समष्टि के आविर्भाव का उषाकाल और कालपाश में से छूटे हुए सत्यवान् और उसको छुड़ानेवाली सावित्री के अवतारी कार्यों के लिये परम प्रेम में एकात्मकता को प्राप्त इन मानव आत्माओं के पृथ्वीलोक पर नित्य होने वाले प्रभात का प्रतीकात्मक, अद्भुत और सुन्दर प्रकार से यहां आलेखन हुआ है।

सृष्टि की प्रलयरात्रि, अचित् में विलीन व्यष्टि और समष्टि की आत्मा की अज्ञानरात्रि तथा पृथ्वीलोक को अतलों की गहन तंद्रा में उतार देनेवाली प्रतिदिन की गाढ़ रात्रि, और उस रात्रि के अंत में शनैः-शनैः उषाकाल में चेतना की जो जागृति आती है उसका कवि ने गहन अंधकार जैसी ही गहन वाणी में और मंत्र की लयवाहितापूर्ण प्रवाह में जो काव्यालेखन किया है उसकी तुलना में रखा जा सके ऐसा वर्णन वेद को छोड़कर अन्य कहीं भाग्य से ही मिल सकेगा।

ऐसी इस रात्रि के शून्याकार अंधकार में अविचारित विचार जैसा कुछ हलचल करने लगा। अज्ञान को जगाने के लिये इसने अचित् को उत्तेजित किया। रूप से अबद्ध चेतना ने प्रकाश के लिये स्पृहा की एक बाल उत्कंठा ने अगाध असीमता का आंचल पकड़ा।

खबर भी न पड़े ऐसी रीति से कहीं एक दरार पड़ गयी। एक आनाकानी करती रंगरेखा ने जीवन की अंधकार से घिरी निद्रा को तंग करना आरंभ किया। किसी एक देवता की दृष्टि ने अवाक् गहनों का भेदन किया। अपने महासुख को भूल गयी आत्मा की खोज करता एक गुप्तचर आया हो, ऐसा लगने लगा। चेतन और आनंद को आरंभ करने के साहस का आह्वान आया। अगाध गहनताओं में विचारज्योति का बीजारोपण हुआ, अंधकार के गहन में एक संवेदन जगा, काल के हृदय में एक स्मृति स्फुरित होने लगी, मानों कि लंबे समय से मृत्यु को प्राप्त हुआ कोई जीव फिर से जीने के लिये प्रेरित हुआ हो। परंतु भूतकाल का सब कुछ मिट गया था और प्रलय को प्राप्त सब कुछ फिर से खड़ा करना था। काम तो अत्यंत कठिन था, परंतु प्रभु का स्पर्श पाया जाये तो सब कुछ पार किया जा सकता है। आशा उल्लसित हुई। उषा ने दर्शन दिया। सदा के सञ्चारी इस चमत्कार ने सबको रूपांतरित कर देनेवाला अपना स्पर्श दिया और प्रभु के प्रदेशों में सौन्दर्य और आश्चर्यमयता ने उथल-पुथल मचा दी। गूढ़ वस्तुओं के किनारे पर स्वप्न का सुनहरी द्वार खुला। अंधा जगत् देखनेवाला बन गया। किसी आराम से लेटे हुए देव की देह के ऊपर से जामा सरक पड़े, अंधकार इस प्रकार सरक

गया। उषा ने अपने अलौकिक रंगों का आभा मंडल रचा, काल में महिमा का बीज बोया गया।

देदीप्यमान देवी ने दर्शन दिया। भूमंडल के भाल पर यह झुकी। आकाश पट पर अद्भुत लिपि में प्रभु की उषाओं की महिमा आलेखित हुई। प्रायः एक परमोच्च प्रादुर्भाव हुआ। परमात्मा के चरण पृथ्वी के समीप आते हुए प्रतीत हुए। जाग्रत श्रुतिः ने पदरव सुना। देवी के ज्योतिर्मय स्मित ने विश्वों के मौन को ज्वालामय बना दिया। सब कुछ एक आत्मार्पण की विधि में पलट गया। हवा ने संयोगी कड़ी बनकर द्यावापृथिवी को एकाकार कर दिया। वायु पूजापाठ करनेवाली पुजारिन बन गयी। वृक्षों की डालियां प्रार्थना में प्रवृत्त हो गयीं।

परंतु अपना लोक परम वस्तु को धारण कर रखने की शक्तिवाला नहीं है। मर्त्य हृदय दिव्य सान्निध्य को लंबे समय तक अपने में धारण नहीं कर सकते। प्रभु का प्रकाश स्वल्प समय तक ही टिका रह सकता है। परिणामस्वरूप आविर्भाव को प्राप्त दैवी दर्शन विलीन हो गया। अति विरल ऐसा वह आश्चर्य अब रहा नहीं। सामान्य दिवस का उजाला दीखने लगा। जगत् के जीव जागे और मर्त्य के भाग्यों का भार उठाकर अपने नित्य के जीवन में निमग्न हो गये।

सावित्री भी जागे हुए लोगों के साथ जगी और जनता के अल्पजीवी आमोद का इसने अभिनंदन किया। परंतु इसके अपने अंदर दिव्य धाम का जो अतिथि अवतीर्ण हुआ था उसने पामर प्रमोदों के प्रति अलिप्तता का अवलंबन लिया। काल की क्षणभंगुर वस्तुओं की पुकार इसके लिये नहीं थी। इसमें थी मर्त्यता में बंदी बनकर रहनेवाली दिव्य आत्मा। अपनी मानव देह में यह अत्युच्च चेतना लेकर आयी थी। अपने द्वारा लाये हुए चिदानंद को यह इस लोक को देने के लिये आयी थी।

परंतु पृथ्वी ने इसके लाये हुए वरदानों को इंकार किया। इसने तो उलटे अपना दुर्दैव ही सावित्री को समर्पित किया। सावित्री भूमि पर स्वर्ग का नंदन लहराना चाहती थी और उसके लिये इसने अपनी आत्मा को बलिदान में होमा था, परंतु इसका यह महाबलिदान व्यर्थ जाता दीखता था, पृथ्वी अपना पाताली नियम इसके ऊपर ठोककर बैठाना चाहती थी। शोकमुक्त सुख के सामने धरा बड़बड़ाहट करती है, आये हुए प्रकाश को दूर धकेल देती है, सत्य को देखकर यह कांपती है। स्वर्ग के दूत के ऊपर यह कीचड़ उछालती है, बचाने के लिये आये हुए हाथों का अवरोध करती है, प्रभु पुत्र का मृत्यु से - महायातना से स्वागत करती है।

सावित्री के बारे में भी कुछ ऐसा ही हुआ। इसकी देवी महत्ता अज्ञजनों को भाररूप लगी, इनका शोक, मंथन और पतन सावित्री के भाग में आया, मर्त्य का दुर्भाग्य अमर्त्य को भोगना पड़ा। परंतु सावित्री ने इस सबको स्वीकार किया, और इस स्वीकृति से इसकी दिव्यता अधिक दिव्य बन गयी।

सावित्री न्यारी थी और न्यारी ही रहती थी, इसके अंतर की घोर वेदना प्रिय से प्रिय भी नहीं जान सके

थे। इसको तो सब का सामना अकेले हाथों ही करना था, सर्वातिशयी साहस का सेवन करना था। मृत्यु की भेंट लेनी थी, निराशा मात्र बाकी रही थी, तो भी इसके मुख से आक्रोश उठा नहीं, सहायता के लिये इसने किसी को पुकारा नहीं।

इसकी आत्मा और इसकी प्रकृति सबके साथ एकरूप बन गयी थी। सारे विश्व का दुःख इस अकेली के अंतर में एकत्र हुआ था। इसकी वेदना एक रहस्यमयी तीक्ष्ण तलवार बन गयी थी। एकाकिनी, अमर के भागीदारों के बिना, कार्य के लिये यह तैयार हुई। इसका बल ब्रह्मांड के महाबलों पर प्रतिष्ठित हुआ था, जगदंबा का प्रेम इसका प्रेम बन गया था।

एक बार तो इसके सब करण स्तब्ध हो गये। दुःख शोक के संवेदन बंद हो गये। दो प्रदेशों के मौन में इसकी चिंता की चलती हुई करवट थम गयी। सतानेवाली स्मृति सो गयी। चेतना को सचेत बनानेवाली शक्ति पीछे चली गयी।

इस अवस्था में से अब इसकी देह की पुकार इसको पीछे लायी। इसकी प्रकृति ने अदृष्ट प्रभाव का अनुभव किया। इन्द्रियां और मन सतेज बने, शांत विचार वापस आया, स्मृति के द्वार खुलने लगे। पूर्व का सब कुछ ही पीछे आया। पृथ्वी, प्रेम और महादुर्भाग्य रात्रि के अंधकार में इसके आसपास मल्लयुद्ध मचाने लगे। अचित् में से उद्भूत छायाधारी बल मथने और हाथापाई करने को उठे। अनाश्वासित अतलगत की रक्षा करती हुई और पृथ्वी की दीर्घ यंत्रणा की उत्तराधिकारिणी एक पाषाण-सी निश्चेष्ट मूर्ति ने आकाश की अनंतता पर अपनी दृष्टि स्थिर की। दुःख की कालरहित गहराइयां देखने को मिली, जीवन का लक्ष्य दिखायी नहीं दिया। अमर आनंद के लिये पृथ्वी दुःख का और कामना का जो बलिदान करती है वह बलिदान फिर से सनातन हस्त के नीचे प्रारंभ हुआ।

जीवन की आवाजों के बीच में, और दृश्य जैसे थे वैसे ही दीखनेवाले दृश्यों के बीच में, सावित्री की दैवी आत्मा, काल के और निर्माण के सामने अडिग बनकर खड़ी हुई। यह था सत्यवान् की मृत्यु का दिवस अंतर में अचल बनी हुई सावित्री ने अब अपनी शक्ति आत्मकेंद्र में एकत्रित की।

(पर्व 01 सर्ग 2 अगले अंक में)

मूल गुजराती लेखक - पूजलाल

हिन्दी अनुवादिका – सरला शर्मा

एक देव की मृत्यु

श्री अरविन्द

अब उठो, चिता की अग्नि से दूर हो जाओ!
एक देव की भस्म को बिखरा दो सितारों में से।
भूल जाओ आशा और अभीप्सा करना।
आओ अब हम अपनी कैद को रंग लें, सींखचों को मजबूत बना लें।
लो, अब वह मर चुका है और वह महानता जो जगत और काल के कार्यों में डालती थी बाधा
हो गई है विलुप्त एक सुनहरी छाया के समान ढकेल दी गई है बाहर युगों के चिंतन से;
गौरव एवं दायित्व, सूर्यप्रभा एवं अनुराग छोड़ गए हैं हमारे जीवन का साथ;
एक बार फिर हम पहन सकते हैं मौत की मटियाली वर्दी और उसकी हाजरी में हो सकते हैं एकत्रित।
वह सब जो उसकी शोभा की भव्यता से हट गया था पीछे की ओर,
उसके प्रकाश और सौन्दर्य एवं अनुपम माधुर्य से लज्जित हो भाग गया था
अब फिर लौट आया है वापिस डींगे मारता हुआ अन्धकार और क्षुद्रता की,
इस ज्वरग्रस्त जीवन के संताप, इसकी क्रूर दुखद अपूर्णता की।
वह सब जो मिथ्या है और हीन है और तुच्छ है अब हो गया
आज़ाद अनुसरण करने के लिए अपनी निम्न प्रकृति की क्रियाओं का फिर एक बार।
बन्द कर दो कालान्तर के प्रतिभाशाली पृष्ठों को!
जीवन का वही पुराना अंकगणित सौंप दो; इसकी मूढ़ निष्क्रियता,
इसकी झुकी हुई पुरातनता होने दो पुर्नस्थापित।

- महानिशा का तीर्थयात्री

श्रीअरविंद से अंतरंग वार्ता

(जब सन् 1938 के नवंबर महीने में, ठीक दर्शन के दिन, श्री अरविन्द दुर्घटनाग्रस्त हो गये और उनके पाँव में चोट आ गयी, तब से शिष्यों की उनके पास बैठने के मौके ज्यादा मिलने लगे। अतिमानस की साधना में निमग्न रहने के कारण इन बैठकों में भी अरविन्द का जो रूप खुलता है, वह अतिमानव का ही रूप है। किन्तु उनकी गोष्ठियों में जब-तब उन विषयों की भी चर्चा छिड़ जाती थी, जो आम लोगों की बातचीत के विषय होते हैं और उन पर श्री अरविन्द की प्रतिक्रिया भी ऐसे मौकों पर कई बार अतिमानवीय न हो कर मानवीय होती थी। ऐसी ही बैठकों से कुछ अंतरंग वार्ता के नमूने।)

सन्तों के बारे में जनसाधारण की सामान्य जिज्ञासा यह होती है कि काम यानी सेक्स पर उनके विचार क्या हैं? यह प्रश्न श्री अरविन्द के सामने अनेक बार आया था, पर हर बार उनके उत्तर का सार यही रहा कि मेरे योग में काम-भोग के लिए स्थान नहीं है। किन्तु विभिन्न प्रसंगों में उत्तर देते हुए जोर उन्होंने समस्या के विभिन्न पक्षों पर दिया था।

परस्त्री-गमन के बारे में आपका क्या विचार है?

यह तो स्पष्ट है कि वह अपनी पत्नी के साथ गमन करने से भी ज्यादा खराब है।”

किन्तु नारी का आकर्षण मुझसे रोके नहीं बनता।

उसके लिए यह समझना भूल है कि नारी का आकर्षण कोई अप्राकृतिक चीज है। वह तो बिल्कुल स्वाभाविक है। मानसिक विकृति के कारण ही वह उस आकर्षण से घबरा रहा है। इतने पर भी वह चाहता है कि उस पर अवरोहण हो। अगर अवरोहण हुआ, तब तो वह टूट जायेगा।

इस योग में नर और नारी के बीच क्या सम्बन्ध है?

यह योग वैराग्य का योग नहीं है, इसमें जीवन या संसार का त्याग कर बाहर करने का कोई महत्व नहीं है। लेकिन इसका यह मतलब यह भी नहीं है कि निम्न शक्तियों को निम्न धरातल पर ही खेलने की छूट दे दी जाये। यह योग के धरातल से ऊपर दिव्य भाव तक उठने का योग है। काम और क्रोध की जो प्राणिक क्रीड़ा है, वह असल में मनुष्य के भीतर छिपे पशु का खेल है जो पशु-मानव के भीतर छिपा है, उसे जीते बिना तुम दिव्य प्रकृति तक कैसे जा सकते हो?

इस योग में और नारी के बीच जो आदर्श संबंध है, उसे तुम अभी नहीं समझ सकोगे। तुम्हें उसे समझने के लिये उसके योग्य बनना होगा। जिसे सामान्यतः लोग प्रेम कहते हैं, वह बिल्कुल सतही भावना है और वह प्राणिक उद्वेग से संबन्धित है। प्रेम का असली रस शान्त रस है, वह उद्वेग-विहीन होता है।

अपनी पत्नी के साथ तुम्हें उस भाव से रहना चाहिए, जिस भाव से तुम उस मित्र के साथ रहते हो, जिसका जीवनोद्देश्य वही है जो तुम्हारा जीवनोद्देश्य है। मैत्री के सिवा और कोई संबंध पत्नी के साथ भी उचित नहीं है। और कहीं तुम से रहा नहीं जाये, तो तुम्हें अलग रहना चाहिए और प्रकृति पर विजय प्राप्त करने की कोशिश करनी चाहिए।

मेरा पति काम-भोग छोड़ने को तैयार नहीं है। वह शास्त्रों का उद्धरण दे कर कहते हैं कि पति-पत्नी के बीच यह कर्म अधर्म नहीं माना जा सकता। अगर कामोपभोग वर्जित मान लिया जाये, तो फिर पति-पत्नी के बीच संबंध ही क्या रह जाता है?

उसे लिख दो कि नर और नारी के बीच जो सच्चा संबंध है, उसे वे दोनों अभी नहीं समझ सकेंगे। इस रहस्य को समझने के लिए उन्हें साधना के मार्ग पर अभी बहुत आगे बढ़ना होगा। केवल बुद्धि से इस रहस्य को समझने की कोशिश बेकार है।"

जब से मैंने (साधिका ने) योग का आरम्भ किया है, मेरे पति मुझ से रुष्ट रहने लगा है। जब मैं इनकार करती हूँ वह इसे अपना अपमान समझना है।

तुम्हें अपनी पति के साथ के संबंध को न स्वीकार करो, न अस्वीकार। वह अपने योग के संकल्प पर दृढ़ रहे, बाकी जो घटनाएँ घटती हैं, उन्हें घटित होने दे। नर-नारी के बीच जो वास्तविक संबंध है, वह आप-से-आप प्रकट हो जायेगा।

बहुत से ऐसे लोग हैं, जो चरित्र में ढीले हैं, किन्तु सफलता उन्हें खूब मिलती है और राजनीति में वे महान् समझे जाते हैं।

सफलता और महत्ता का चरित्र के साथ क्या सम्बन्ध है? संसार के अधिकांश महापुरुष दुश्चरित्र हुए हैं। चरित्र की शिथिलता का कारण यह है कि उस व्यक्ति का प्राणिक तत्त्व (वाइटल) बहुत बलवान है। प्राणिक तत्त्व की यही प्रबलता उसकी सफलता का कारण होती है प्राणिक आवेग को बेलगाम छोड़ देना ही दुश्चरित्रता है। यह आग बल के स्तर पर उठता है, दुर्बलता के स्तर से। अपने प्राणिक आवेगों का दमन असुर भी करते है, जिससे आगे चलकर वे भी व्यापक आनन्द का भोग कर सकें। जो केवल दुर्बलता के कारण या समाज के भय से अपने आवेगों को भोग की ओर जाने से रोकते हैं,

उन्हें मैं पवित्र नहीं कहूँगा। साधारण नैतिकता यही है कि हम समाज के नियमों का पालन करें। जब गाँधी जी ने अपनी गर्भवती स्त्री के साथ समागम किया था, तब उसमें कोई अनैतिक बात नहीं थी, लेकिन गाँधीजी ने उसे पाप मान लिया। ज्यादा सन्त ऐसे ही हुए हैं, जो अपने जीवन के आरम्भ में पापी रहे थे, जैसे विल्वमंगल पापी थे।

क्या कुछ संत इसके अपवाद नहीं है?

नहीं। कारण यह है कि वे अपने पाप को स्वीकार (कनफेस) नहीं करते। सी.आर.दास चरित्रवान नहीं थे, लेकिन कौन कह सकता है कि वे महान् नहीं थे?

शंकराचार्य तो अवश्य ही चरित्रवान रहे होंगे।

ब्रह्म से ही पूछ लो। मैं इसका उत्तर नहीं दे सकता। यह बड़ा ही पेचीदा सवाल है। मेरा तो अनुमान यह है कि ब्रह्म ने शंकर से कहा होगा कि तुम इतने तार्किक हो कि तुम मुझे में लीन नहीं हो सकते।

आपके योग में काम का वर्जन है, लेकिन तंत्र-मार्ग में, खास कर वाम मार्ग में, काम-शक्ति का उपयोग आध्यात्मिक उन्नति के लिए किया जाता है।

कैसे?

वही तो हम जानना चाहते हैं।

श्री अरविन्द ने कहा, "अगर तुम से न रहा जाये, तो मछली तुम खा सकते हो, पीना चाहो, तो शराब भी पी सकते हो। लेकिन काम-कृत्य का उपयोग तुम आध्यात्मिक जीवन के लिए कैसे कर सकते हो? अपने आप में काम-कृत्य उतना बुरा नहीं है, जितना नीतिकार उसे बताते हैं। यह शरीर का स्वाभाविक आन्दोलन है और उसका कोई लक्ष्य है। अपने आप में वह न तो अच्छा है, न बुरा है। लेकिन योग की दृष्टि से काम-शक्ति संसार में सब से बड़ी शक्ति है। अगर उचित ढंग से उसका उपयोग किया जाये, तो वह तुम्हारे अस्तित्व को सँवारती है, उसे जवान बनाती है। लेकिन उसका उपयोग मामूली ढंग से किया जाये, तब वह दो कारणों से बहुत बड़ी बाधा बन जाती है। पहला कारण यह है कि काम–कृत्य से प्राणिक शक्ति का ह्रास होता है, काम-कृत्य क्षति-पूर्ति है। काम-कृत्य तुम्हें मृत्यु की ओर ले जाता है, यद्यपि उससे नया जीवन भी जन्म लेता है। नये जीवन का उत्पन्न होना, यही काम-कृत्य की क्षति-पूर्ति है। काम-कृत्य की ओर यात्रा है, यह इस बात से भी घृणा कि ओर यात्रा है, यह इस बात से भी सिध्द होता है कि संभोग के पश्चात् आदमी को क्लान्ति की अनुभूति होती है, किसी-किसी को उससे घृणा भी होने लगती है।

मगर आँकड़े तो इसी बात के अधिक हैं कि अविवाहितों की अपेक्षा विवाहित लोग ही ज्यादा जीते हैं।

यह ठीक–ठीक सही नहीं है। कोई दीर्घजीवी यह कह सकता है कि वह सिगरेट नहीं पीता है, इसीलिए वह सौ साल तक जी सका है। मगर कोई यह भी कह सकता है कि सिगरेट पीने से कोई फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि सिगरेट पीता हुआ मैं शतायु हुआ हूँ। कामकृत्य के साथ जो उत्तजेना चढ़ती है, वह मनुष्य की साइकिक संभावनाओं को नष्ट कर देती है और चेतना के उच्च बिन्दु से उतर कर मनुष्य नीचे आ जाता है।

काम-कृत्य में जो नीचे ले जाने की प्रवृत्ति है, उसमें विवाह और कानून की सहमति से कोई फर्क पड़ता है या नहीं?"

बिल्कुल नहीं। जो भी नैतिक नियम हैं, समाज की व्यवस्था के लिए है, जन्म लेने वाले बच्चों के कल्याण के लिए हैं। जहाँ तक योग का सम्बन्ध है, अपनी पत्नी के साथ संभोग उतना ही बुरा है, जितना परायी स्त्री के साथ। आध्यात्मिक ध्येय के लिए काम का उपयोग केवल वे लोग कर सकते है जो मानवीय धरातल से ऊपर उठ गये हैं, जिनके भीतर आध्यात्मिक और प्राणिक, दोनो ही शक्तियाँ विद्यमान हैं।

यदि काम-कृत्य का नतीजा इतना खराब है, तब तो साधना में उससे सहयोग लेने की बात सोचनी भी नहीं चाहिए। तब तो हमारा सुरक्षित मार्ग पर ही रहना ठीक है।

इस सवाल का जवाब देना बड़ा ही खतरनाक है। इसका जवाब मैं तुम्हें तब दूँगा, जब तुम मानवीय धरातल से ऊपर उठ जाओगे।

जब हम मानवीय चेतना से ऊपर उठ जाते हैं, तब काम-कृत्य से होने वाले ह्रास का क्या होता है? वह रोका कैसे जाता है?

उच्च शक्तियाँ चीजों को अपने ढंग से सँभालती हैं और हानिकारक प्रभावों को वे रोक देती हैं। उस समय कामोपभोग का तरीका नहीं होता, जो मानवीय धरातल पर देखा जाता है। आध्यात्मिक स्तर पर उसका रूप ही परिवर्तित हो जाता है।

एक दिन चर्चा इस बात की चली कि प्रत्येक भारतवासी की औसत आय क्या है। यही कोई तीस रूपये साल, यानी ढाई रूपये प्रति मास।

तब तो न्यू इंडिया ने अच्छा सुझाव दिया है। उसका प्रस्ताव यह है कि प्रत्येक मंत्री को उतना ही वेतन मिलना चाहिए, जितनी भारतवासियों की औसत आय है। जैसे-जैसे जनता की औसत आय में वृद्धि होगी, वैसे ही वैसे मंत्री का वेतन और भी बढ़ेगा।

क्या भारत सभ्य है? - 1

भेड़िये के द्वारा आक्रांत मेमने की तरह अपनी हत्या होने देने से कोई विकास नहीं होता, कोई प्रगति नहीं होती, न इससे कोई आध्यात्मिक योग्यता प्राप्त होने की ही आशा बंधती है । समस्वरता या एकता अपने समय में आ सकती है, पर वह एक ऐसी मूलगत एकता होनी चाहिये जिसमें विविधता पूर्ण विकास के लिये पूरी स्वाधीनता हो, वह एक का दूसरे के द्वारा भक्षण या फिर एक असंगत एवं बेसुरा मिश्रण नहीं होनी चाहिये।

मिस्टर विलियम आर्चर ने भारत के संपूर्ण जीवन एवं संस्कृति पर आक्रमण किया, यहां तक कि उसकी महान-से-महान उपलब्धियों, दर्शन, धर्म, काव्य, चित्रकला, मूर्तिकला, उपनिषद, रामायण, महाभारत आदि सब को एक साथ एक ही कोटि में रखकर सब के बारे में कह डाला कि ये अवर्णनीय बर्बरता का एक घृणास्पद स्तूप है। विख्यात विद्वान तथा तंत्र-दर्शन के व्याख्याता सर जान वूड्रोफ़्फ़ (Sir John Woodroffe) ने 'क्या भारत सभ्य है?' शीर्षक से एक पुस्तक प्रकाशित की जो मिस्टर विलियम आर्चर (Mr. William Archer) के अतिशयोक्ति पूर्ण कटाक्ष के उत्तर में लिखी गयी थी।

उस समय बहुतों ने यह तर्क उपस्थित किया था कि ऐसे समालोचक की बात का उत्तर देना व्यर्थ में शक्ति गंवाना है, अथवा इस प्रसंग में तो वह एक निरर्थक बात को अनुचित महत्व देना भी हो सकता है। परंतु सर जान वूड्रोफ़्फ़ ने इस बात पर बल दिया कि इस प्रकार के अज्ञानपूर्ण आक्रमण की भी उपेक्षा नहीं करनी चाहिये; क्योंकि इसमें उक्त प्रश्न तार्किक दृष्टिकोण से उठाया गया था, ईसाई एवं प्रचारकीय दृष्टिकोण से नहीं। वूड्रोफ़्फ़ की पुस्तक महत्त्वपूर्ण थी, और इसका कारण यह नहीं था कि वह एक विशिष्ट समालोचक का उत्तर थी बल्कि इससे भी बढ़कर यह कि उसमें भारतीय सभ्यता के बचे रहने तथा संस्कृतियों के युद्ध की अवश्यंभाविता का संपूर्ण प्रश्न खूब सुसंगत और ओजस्वी रूप में उठाया गया था। भारत में कोई सभ्यता थी या नहीं अथवा है या नहीं यह प्रश्न अब विवादास्पद नहीं है। भारतीय आध्यात्मिक विचारधारा यूरोप और अमेरिका के अंदर क्रमशः अधिकाधिक प्रवेश कर रही है जो यूरोप के आक्रमण के प्रति भारत का अपना विशिष्ट मुंहतोड़ जवाब है; किंतु ग्रंथकार

ने इसे पर्याप्त महत्व नहीं दिया है। इस दृष्टिकोण से देखने पर सारा प्रश्न एक और ही रूप धारण कर लेता है।

इस पूरे विवाद को दो अलग-अलग दृष्टि से देख सकते हैं।
प्रथम दृष्टि से इसका विश्लेषण करें तो यह समझना आवश्यक है कि आधुनिक संघर्ष में सिर्फ रक्षा का परिणाम अंततः पराजय भी हो सकता है, और यदि युद्ध आवश्यक ही हो तो एकमात्र उचित नीति यही हो सकती है कि एक सबल, जीवंत एवं सक्रिय रक्षा पर प्रतिष्ठित एक तीव्र आक्रमण किया जाये; क्योंकि उस आक्रमण करने वाली शक्ति के द्वारा ही स्वयं रक्षा भी प्रभावशाली हो सकती है। सर जान उड्रफ प्रोफेसर लोवेस डिकिन्सन (Prof. Lowes Dic- kinson) के इस अद्भुत कथन को उद्धृत करते हैं कि विरोध उतना एशिया और यूरोप के बीच नहीं है जितना कि भारत और शेष जगत बीच।

सर जान उड्रफ ने एक ईसाई धर्मप्रचारक का कथन उद्धृत किया है जो यह देखकर "चकित है कि किस हदतक जर्मनी और अमरीका की, यहाँ तक कि इंग्लैंड की भी धार्मिक मान्यताओं में हिन्दू सर्वेश्वरवाद प्रविष्ट होना आरंभ हो गया है" और इसके बढ़ते हुए प्रभाव को वह आगामी संतति के लिये एक आसन्न "संकट" समझता है। उन्होंने एक और लेखक का उद्धरण दिया है जो यहाँ तक कहता है कि यूरोप के समस्त उच्चतम दार्शनिक चिंतन का मूलस्रोत ब्राह्मणों की पूर्ववर्ती विचारधारा ही है। इतना ही नहीं, वह तो यह भी कहता है कि बौद्धिक समस्याओं के जो भी समाधान आधुनिक युग में किये गये हैं ये सभी पौरस्त्य विचारकों को पहले ही ज्ञात हो चुके थे तथा पूर्व के ग्रंथों में पाये जा सकते हैं। एक प्रसिद्ध फ्रांसीसी मनोवैज्ञानिक ने हाल ही में एक भारतीय दर्शक को बताया कि यथार्थ मनोविज्ञान की सभी विशाल धाराओं और प्रधान सत्यों का, उसके व्यापक आदर्श का निरुपण भारतवर्ष पहले ही कर चुका है और अब यूरोप जो कुछ कर सकता है वह बस इतना ही है कि सही ब्योरों तथा वैज्ञानिक प्रमाणों के द्वारा उनकी खानापूर्ति कर दे।

क्योंकि आधुनिक संघर्ष की अवस्थाओं में केवल आक्रमणकारी प्रतिरक्षा ही प्रभावशाली हो सकती है। परंतु यहां हम अपने आपको इससे एक ठीक उलटी मनोवृति तथा नितांत बाधक मनोदशा के सामने खड़ा पाते हैं क्योंकि, आज ऐसे भारतीय बड़ी संख्या में देखने में आते हैं जो एक दृढ़ता पूर्वक निष्क्रिय आत्मरक्षा के ही पक्ष में हैं, और इसमें वे जो कुछ उग्रता लाते हैं वह वास्तव में एक भद्दी एवं विचारशून्य सांस्कृतिक शोवैंवाद (Chauvinism - वह तर्क जो अपने धर्म और अपनी जाति के प्रति अंधा प्रेम सिखाता है) ही है जो यह मानता है कि जो कुछ भी हमारा है वही हमारे लिये अच्छा है क्योंकि वह भारतीय है अथवा जो कुछ भी भारत में है वही सबसे उत्तम है, क्योंकि वह ऋषियों की रचना है; मानों बाद के विकास में जो कुत्सित एवं विशृंखल चीजें आ गयीं वे सब भी हमारी संस्कृति के उन संस्थापकों ने ही निश्चित कर दी थीं जिनका हमने अत्यंत दुर्व्यवहार एवं दुरुपयोग किया है और प्रायः उनके नाम से बहुत अधिक जाल रचाया है।

प्रश्न यह है कि क्या निष्क्रिय प्रतिरक्षा का कोई फल हो सकता है? मेरा मत है - उसका कोई मूल्य नहीं है; क्योंकि वस्तुओं के सत्य के साथ उसका कोई मेल नहीं और उसका असफल होना सुनिश्चित है। अपनी पूंजी को नये लाभों के लिये प्रयुक्त किये बिना उसीपर निर्वाह करने का अर्थ होता है दिवाला निकालना और कंगाल बन जाना। अतीत को भविष्य के किसी वृहत्तर लाभ, उपार्जन और उन्नति के लिये एक चल और चालू पूंजी के रूप में प्रयुक्त एवं व्यय करना होगा परंतु लाभ प्राप्त करने के लिये हमें कुछ खर्च भी करना होगा, फलने-फूलने और अधिक समृद्ध जीवन यापन करने के लिये हमें पहले कुछ त्याग भी अवश्य करना होगा, यही जीवन का विश्वव्यापी विधान है।

उग्र आत्म रक्षा का अर्थ है इस आभ्यंतरिक एवं सुदूरगामी दृष्टि से नव सृजन करना और इसके लिये जहां इस बात की जरूरत है कि जो कुछ हमारे पास है उसे एक अधिक व्यंजक एवं शक्तिशाली रूप दिया जाय, वहां यह भी आवश्यक है कि जो कुछ हमारे नये जीवन के लिये उपयोगी है और जिसे हमारी आत्मा के साथ समस्वर किया जा सकता है उसे प्रभावशाली रूप में आत्मसात् करने की छूट भी हमें प्राप्त हो। युद्ध, आघात और संघर्ष अपने-आप में कोई निरर्थक संहार नहीं होते, वे तो काल के महान् लेन-देन के लिये एक उग्रतापूर्ण आवरण होते हैं। यहां तक देखने में आता है कि अत्यंत सफल विजेता भी पराजित से बहुत कुछ ग्रहण करता है और यदि कभी वह उस बहुत कुछ को हथिया लेता है तो बहुत बार वह चीज उसे अपना बंदी बना लेती है। पश्चिमी आक्रमण पूर्वीय संस्कृति की रीति-नीतियों को ध्वस्त करने तक ही सीमित नहीं है; इसके साथ ही, पश्चिम अपनी संस्कृति को समृद्ध बनाने के लिये पूर्व की अधिकांश अमूल्य संपदा को चुपचाप तथा व्यापक और सूक्ष्म रूप में अपनाता भी जा रहा है। अतएव अपने अतीत के गौरवमय वैभव को सामने लाकर उसे यूरोप और अमरीका में उनकी ग्रहणशक्ति के अनुसार यथेष्ट रूप में फैला देने से भी हमारी रक्षा नहीं होगी। वह उदारता हमारी संस्कृति पर आक्रमण करनेवालों को समृद्ध और सशक्त बनायेगी, किंतु हमारे अंदर तो वह केवल एक ऐसा आत्मविश्वास पैदा करने में ही सहायक होगी जिसे यदि एक महत्तर सृजन करने के लिये संकल्प-शक्ति का रूप न दे दिया गया तो वह निरर्थक और यहां तक कि पथभ्रष्ट करनेवाला ही होगा। हमें तो नयी एवं अधिक शक्तिशाली रचनाओं को लेकर इस आक्रमण का सामना करना होगा, वे रचनाएं आक्रमण का केवल निवारण ही नहीं करेंगी बल्कि जहां तक संभव तथा मानव जाति के लिये हितकर होगा वहां तक वे आक्रमणकर्त्ता के देश में प्रवेश कर युद्ध भी करेंगी। इसके साथ ही, जो कुछ हमारी आवश्यकताओं के अनुकूल तथा भारतीय भावना के अनुरूप हैं उस सब को हमें एक प्रबल सृजनशील सात्म्यकरण के द्वारा ग्रहण कर लेना होगा।

कुछ दिशाओं में, जो अभी बहुत ही कम है, हमने ये दोनों प्रयत्न आरंभ कर दिये है। अन्य दिशाओं में हमने केवल एक विवेकहीन मिश्रण की ही सृष्टि की है या फिर जल्दबाजी से भरा, भद्दा और बिना पचाया हुआ अनुकरण भर किया है और अभी भी कर रहे हैं। अनुकरण, आक्रांता के यंत्रों और उपायों का स्थूल और अस्तव्यस्त अनुकरण कुछ काल के लिये उपयोगी हो सकता है, किंतु

अपने-आप में यह पराजय स्वीकार करने का केवल एक अन्य प्रकार ही है। केवल उपयोग करना ही पर्याप्त नहीं; उसे सफलता के साथ आत्मसात् करने एवं भारतीय भावना के अनुकूल बनाने की भी आवश्यकता है।

यह हुई वाह्य दृष्टि, जिसमें हमने एक तरह का विश्लेषण किया, परंतु हमारे सामने यह जो विवाद उपस्थित है इसके संबंध में एक और भी दृष्टि है। उस दृष्टि से देखने पर इसका स्वरूप वैसा नहीं रहता जैसा कि संस्कृतियों के संघर्ष के रूप में स्थूल और उत्तेजक ढंग से वर्णित किया गया है; बल्कि तब यह एक अत्यंत अर्थपूर्ण समस्या के रूप में हमारे सामने आता है; यह एक विचारोत्तेजक निर्देश का रूप ग्रहण कर लेता है जिसका प्रभाव केवल हमारी ही सभ्यता पर नहीं बल्कि जो भी सभ्यताएं आज तक जीवित हैं उन सब पर पड़ता है।

(भारतीय संस्कृति के आधार – क्या भारत सभ्य है? अध्याय 1,2,3 से संकलित)
(क्रमशः)

उन दिनो लो ं गो की समझ ह ी नही आं ता था कि भारत जैसा सब प्रकार से दीन-हीन देश भला स्वराज्य की कल्पना कै से कर सकता है। वे कहते थे – “यह सपना है, सपना।”

चोरी की व्यापकता

“जी हाँ, मैं बस एक ही अवगुण छोड़ने कह रहा हूँ। गीता के 16 वें अध्याय में श्री कृष्ण ने दैवीय गुण और आसुरी अवगुण की चर्चा की है। दैवीय गुणों की तालिका लंबी है जब कि आसुरी अवगुण की तालिका छोटी है। गुणों का अपनाना कठिन प्रतीत होता है जबकि अवगुणों को छोड़ना सहज। अतः मैं आप से अवगुण छोड़ने कह रहा हूँ, वह भी बस एक ही। अगर एक से ज्यादा छोड़ने कहूँगा तब तो आप मेरी बात सुनेंगे ही नहीं, अतः बस एक के लिए ही कह रहा हूँ। आप केवल एक ही छोड़िये और फिर देखिये कैसे धीरे-धीरे आपका जीवन सुधरता जाएगा, जीवन शुद्ध-शांत और निर्मल हो जाएगा।” आज के सत्संग का यही सार था – एक अवगुण छोड़िये। स्वामी जी ने यह भी नहीं बताया की कौन सा अवगुण छोड़ें, वह भी हम पर ही छोड़ दिया।

सत्संग से उठ कर बाहर निकलते ही सुनने को मिला - “गुण हों या अवगुण, बड़ी लंबी फेहरिस्त है। वेद, उपनिषद, पुराण, गीता, रामायण, धर्माचार्य, महामंडलेश्वर, गुरु, ऋषि, कथा वाचक हर समय केवल बस यही तो कहते रहते हैं – या तो कोई कथा-कहानी सुनाते हैं या फिर ये करो-ये न करो। उनकी बातें मानने लगें तो जीने लायक ही नहीं रहें। वे जो कहते हैं उसे बस वहीं छोड़ कर चले आने में ही भलाई है। क्यों ठीक कह रहा हूँ न? शायद यही कारण है कि वे अपनी कहते रहते हैं और दुनिया अपनी चाल से चलती रहती है। और तो और महर्षि पतंजलि को लें तो उन्होंने भी पाँच यम और पाँच नियम गिना दिये। एक-दो गिनाते तो शायद उस पर फिर भी विचार कर लेते”।

“भाई साहब जरा ठहरिए! अगर एक-एक होते तो क्या आप उन पर विचार करते?”

अपनी झोंक में लेकिन थोड़ा संभलते हुए कहा, “तब-का-तब सोचते!”
“अच्छा बताइये ये पाँच-पाँच क्या हैं?”, मैंने पूछ ही लिया।

“पाँच यम हैं अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य और पाचवाँ अपरिग्रह। अब आप ही बताइये इन्हें अपना लें तो कैसे जीवन चले। अपने तो बस एक ही सिद्धान्त अपना रखें हैं – व्यावहारिकता। मनुष्य को व्यावहारिक होना चाहिए, बस इससे अपना कम चल जाता है”। उन्होंने घोषणा कर दी।
“जी, ठीक कहा अपने, अहिंसा – गुस्सा तो नाक पर चढ़ा रहता है, बच्चों को डांट न लगाएँ, मजदूर को चार गाली न दें तो वे काम ही न करें। और ये सत्य, अगर सत्य बोलें तो जेल में रहें या फिर सड़क किनारे खाली कटोरा ले कर बैठे रहें, झूठ बोले बिना तो भीख भी नहीं मिलती।”
“हाँ, और नहीं तो क्या!”, मैंने जोड़ा।

“अस्तेय- चोरी न करना, अरे हम कोई चोर हैं क्या, चोरी तो न हम करते हैं और न करेंगे। चोरी तो छोड़ी हुई ही है!”

“अरे वाह! तब हम यह मान लेते हैं कि हमने एक अपना लिया है, अब हमें मुक्त करो। क्यों क्या कहते हैं आप?”

“हाँ, हाँ। क्या दिक्कत है, ऐसा काम करें कि साँप भी मर जाए और लाठी भी न टूटे। यह ठीक वैसा ही है जैसा कि हम किसी तीर्थ पर जाते हैं तो कुछ छोड़ने कहा जाता है और हम वही छोड़ते हैं जो पहले से ही छोड़ा हुआ है। आम-के-आम गुठली के दाम।”

दूसरे दिन मैं उन सज्जन को लेकर सत्संग से पहले स्वामीजी से पास पहुँच गया और उन्हें अपने निर्णय के बारे में बताया। मेरे साथी को तो जरा बुरा लगा लेकिन मुझे लगा कि यह आवश्यक है ताकि हम अपने निर्णय को जरा गंभीरता से लें। स्वामीजी प्रसन्न हुए और इसके साथ यह भी जोड़ दिया, “मुखे विश्वास है कि अपने स्वतः यह निश्चय किया है आप लोग अब चोरी नहीं करेंगे लेकिन अगर कहीं गलती से, लालच से कर भी लिया तो आप प्रायश्चित भी कर लेंगे या तो उसे बता देंगे या वह सामान वापस वहीं रख देंगे।” हम दोनों ने स्वीकार किया। अनुकूल समय देख स्वामीजी ने चोरी की व्याख्या भी कर दी - शब्दकोश के अनुसार चोरी की परिभाषा कुछ इस प्रकार बनती है – “जब कोई किसी व्यक्ति की सम्मति या जानकारी के बिना उसका समान या संपत्ति ले लेता है या हटा देता है तो इसे चोरी कहा जाता है। यानी बिना सम्मति या जानकारी के ले लेना ही नहीं बल्कि हटा देना भी चोरी ही है।” स्वामीजी ने विदा करते हुए कहा इसे यहीं मत छोड़ना चोरी के अर्थ पर मनन करते रहना और इसे विस्तारित कराते रहने, जितना विस्तार दोगे जीवन उतना ही सुधरता जाएगा।

इस चोरी को और जरा गहराई से देखने और उस पर विचार करते-करते मुझे अपने जीवन की एक छोटी सी आपबीती याद आ गई। मैं अपने सहपाठी, सुरेश के कार्यालय में बैठा था। उसका लड़का राहुल भी वहीं था। गर्मी का मौसम था, टिफिन में आम भी था। मैंने लेने से इंकार किया और कहा कि मैंने आम छोड़ रखा है और बताया कि आम मेरे प्रिय फलों में से एक है, लेकिन उस वर्ष पूरी गया था वहाँ जगन्नाथ महाप्रभु के मंदिर के वट वृक्ष पर एक वर्ष तक आम न खाने का वचन देकर आया हूँ। राहुल ने बताया कि उसने भी इसी वर्ष वहीं आम छोड़ा है। लेकिन तभी टिफिन में रखे आचार को मैंने उठा लिया। राहुल ने बताया, “अंकल यह आम का आचार है।” मुझे बात समझ नहीं आई तो उसने जोड़ा ‘अंकल अभी तो आपने बताया कि आपने आम छोड़ रखा है’। ‘हाँ, लेकिन यह तो आम का ......’, यहाँ तक कहने के बाद मेरी जबान तलवे से चिपक गई। मुझे सचमुच बड़ा अच्छा लगा जिसे मैं बच्चा मान रहा था उसने आम को छोड़ने के वचन को बड़ी गहराई से समझा था।

जब आम छोड़ने की बात पर, एक बच्चे ने इतनी गहराई से विचार किया तब फिर चोरी पर भी विचार करने की जरूरत है। श्रीअरविंद के ‘पागलपन’ की चर्चा करें तब तो चोरी का पूरा अर्थ

ही बदल जाता है, इसमें केवल दूसरे की ही नहीं बल्कि खुद की अपनी ही वस्तु-संपत्ति का उपभोग करना चोरी हो सकती है।

21 वर्ष की आयु मैं, 14 वर्ष इंग्लैंड में बिता कर, 1893 में बड़ौदा के महाराज के निमंत्रण पर बड़ौदा पहुँचते हैं। 1901 में उनका विवाह मृणालिनी देवी से होता है। लगभग 1905 में वे अपनी पत्नी को एक पत्र लिखते हैं जिसमें वे अपने तीन 'पागलपन' की चर्चा करते हुए पहले पागलपन के बारे में लिखते हैं कि अगर वे अपने पास जितनी उनको आवश्यकता है उससे ज्यादा रखते हैं तब वे अपने आप को चोर समझेंगे। उस समय उन्हें 500 रुपए माहवार मिला करते थे। उस समय के हिसाब से यह एक शाही राशि थी। यह राशि पूर्ण रुपेण श्रीअरविंद की उनकी अपनी थी लेकिन फिर भी वे उसका अपने लिए उपयोग करना चोरी मानते थे। यह चोरी का एक अन्य आयाम है। अपना होने के बावजूद अपनी आवश्यकता से ज्यादा रखना, जिसके पास उसका अभाव है उसकी आवश्यकताओं की चोरी करना है। इस चोरी से बचने के लिए अपनी आवश्यकता अनुसार, लालच नहीं, रख बाकी की राशि बाहर खुले मेज पर रख दिया करते थे। कोई भी, जितनी जरूरत होती थी वहाँ से उठा सकता था और इसके लिए न तो किसी की इजाजत चाहिए होती थी न ही किसी को बताने की।

इशोपनिषद का पहला श्लोक है:

ईशा वास्यम् इदं सर्वम् यत्किञ्च जगत्यां जगत् ।
ते न त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद् धनम् ॥१॥

श्लोक के अंतिम छंद का अर्थ है 'किसी दूसरे के धन की इच्छा मत करो', यानि किसी दूसरे के धन की इच्छा करना भी चोरी या चोरी की तैयारी है अतः उसे भी त्यागो। चोरी को त्यागने का अर्थ है मन से, कर्म से और वाणी से चोरी का त्याग करना।

श्रीकृष्ण गीता के तीसरे अध्याय में कहते हैं :

इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यन्ते यज्ञभाविताः
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुङ्क्ते स्तेन एव सः ॥ ।
यज्ञ (आत्मसमर्पण) के द्वारा बढ़ाये हुए देवता तुमलोगों को बिना माँगे ही इच्छित भोग निश्चय ही देते रहेंगे। इस प्रकार उन देवताओं के द्वारा दिये हुए भोगोंको जो पुरुष उनको बिना दिये स्वयं भोगता है, वह चोर ही है ॥ 3:12 ॥

यह पूरी सृष्टि इसलिए चल रही है क्योंकि देना और लेना निरंतर चलता रहता है। देने से ही मिलता है और जो मिला उसमें से फिर देना। और जो इस कड़ी को तोड़ता है यानि सिर्फ अपने लिए लेता है और उसमें से देने वाले को नहीं देता वह चोर है।

सामान्यतः एक और वस्तु की चोरी करने की हमारी आदत है जिसे हम अनजाने में ही करते रहते हैं, वह है दूसरों के समय की चोरी। निर्धारित समय से न आ कर किसी को इंतजार करवाना उस के समय की चोरी है। अगर वहीं किसी आयोजन में जहां हम वक्ता हैं या प्रमुख अतिथि हैं और वहाँ विलंब से पहुँच कर औरों को इंतजार करवाना वहाँ उपस्थित सबों के समय की चोरी है। नियत समय से ज्यादा बोलना उपस्थित श्रोताओं की या अन्य वक्ता के समय का अपहरण है। वैसे ही, न सुनने की इच्छा होने के बाद भी बोलते जाना, श्रोता या अन्य वक्ता के समय की चोरी ही है।

अनिच्छा से दी जाने वाली वस्तु को लेना, बिना इच्छा के किसी के प्रेम की अपेक्षा रखना, ज्यादा लेकर कम देना यहाँ तक की कम देने की भावना रखना भी अलग-अलग प्रकार की चोरियाँ या चोरी की तैयारी ही हैं, इनसे भी बचना चाहिए।

एक अन्य प्रकार की प्रचलित चोरी है – जमाखोरी। मुनासिब से ज्यादा कमाने की इच्छा से कम उपलब्ध सामग्री को जमा करना, भविष्य के लिए इतना जमा कर लेना कि दूसरे के वर्तमान के लिए भी न रहे, क्या चोरी नहीं है? कोरोना के समय ऐसी वारदातें देखने को मिलीं जब कई लोग रोजमर्रा की वस्तुएँ, भविष्य सुरक्षित करने की मंशा से जमा करने के कारण कई वस्तुओं की कमी हो गई थी, यह चोरी ही तो है। किसी कॉलोनी या मुहल्ले में पानी की कम आपूर्ति की खबर आने पर जरूरत से ज्यादा पानी जमा करना भी इसके ज्वलंत उदाहरण हैं। यहाँ हम दूसरे के हिस्से का संसाधन चुरा कर खुद के लिए या खुद के मुनाफे के लिए जमा कर रहे हैं।

अन्य के कार्य को अपना बताना या अपने होने का आभास देना तो प्रत्यक्ष रूप से चोरी है ही किसी के कार्य की उचित प्रशंसा न करना भी सूक्ष्म चोरी है। किसी के लिखे हुआ को अपना बताना, बिना अधिकार के फिल्म का सार्वजनिक प्रदर्शन करना, लेखक-गायक-निर्माता की सहमति के बिना उसका प्रयोग करना तो आज कॉपी-राइट के नियमों के अंतर्गत जुर्म ही है, चोरी तो है ही।

किसी की अनुपस्थिति में उसकी निंदा करना क्या उसकी प्रतिष्ठा, मान, मर्यादा की चोरी नहीं है? भविष्य और आने वाली पीढ़ी का ध्यान न रखते हुए प्रकृति का अनावश्यक दोहन भी चोरी का ही स्वरूप है।

आप जितना गहरे उतरते जाएंगे, चोरी के नए-नए आयाम खुलते जाएंगे। जैसे-जैसे आप उन्हें जिंदगी में उतारते जाएंगे, आपका जीवन निखरता जाएगा।
कबीर को याद कीजिये-

जिन खोजा तिन पाइया, गहरे पानी पैठ,
मैं बपुरा बूडन डरा, रहा किनारे बैठ।

किनारे बैठ कर ही अगर संतोष हो जाता है तब आपकी मर्जी लेकिन अगर मोती चाहिए तो पानी में गहरा उतरना होगा।

ईश्वर

-श्रीअरविन्द

तू जो कि सर्वव्यापी है समस्त निचले लोकों में,
फिर भी है विराजमान बहुत ऊपर,
उन सबका स्वामी जो कार्य करते हैं शासक हैं और हैं ज्ञानी,
प्रेम का अनुचर!
तू जो कि एक नन्हें कीट और मिट्टी के ढेले की भी
नहीं करता है अवहेलना,
इसीलिए इस विनम्रता के कारण हम जानते हैं
कि तू ही है परमात्मा।

-महानिशा का तीर्थयात्री

कृष्ण

- श्री अरविन्द

ओ असीम प्रकाश और तुम, ओ आत्म-विस्तृत वृहद् आकाश अनन्त,
किसको तुमने जकड़ लिया और छुपा लिया, शोभायमान मुख, अनश्वर अंग?
व्यर्थ बोलते झूठ ये अन्तरिक्ष एवं काल, "महाशून्य हैं हम, कोई भी नहीं।"
व्यर्थ ही संघर्षरत है आत्मा एवं चिल्ला रहा विश्व, "मैं, मैं एकमात्र।"
कोई एक है वहाँ, आत्मा का 'आत्मा', वृहद् विश्व का आत्मा, समय का मूल उद्गम,
हृदयों का हृदय, मनों का मन, वही है अकेला विराजमान, भव्यतम।
ओह, नहीं है कहीं शून्य 'चरम' आत्मसमाहित, महत्तर एवं मौन,
वे हाथ लेते हैं थाम जो लेते हैं थाम जो करते आलिंगनबद्ध एवं वे लालिमायुक्त होंठ जो लेते चुम्बन करते हैं वंशीवादन।
वह सभी को करता है प्यार, सभी को गतिमान, सब कुछ है उसका, वही है सब कुछ!
अनेक अंग प्रत्यंग तृप्त करते हैं उसकी सनक, ग्रहण करते हैं उसका हर्षोल्लास।
दो में वह एक, दो जो जानते हैं यह अन्तरभेद हैं अनुभूति में समृद्ध,
दो जुड़ जाने हेतु, एक हो जाने हेतु, यही है उसका विलक्षण रहस्य।

- महानिशा का तीर्थयात्री

अनागत के पथ पर – २

छोटे नारायण शर्मा

(गतांक से आगे)

(पिछले अंक का अंतिम परिच्छेद –
फिर अगर चिन्मय पुरुष का प्राकट्य दिव्य चेतना सम्पन्न जीवन का विकास ही सृष्टिक्रम का नया पादक्षेप है, वर्तमान का रूपांतरित दूसरा भविष्य है तो श्रीअरविन्द का योग है इस विश्वक्रिया की मूलभूत धारा। श्रीअरविन्द इसी भविष्य सिद्धि के अवतार और उद्योक्ता हैं।)

श्रीमां ने जब उनको (श्रीअरविंद को) पहली बार देखा था तो कहा था "इससे कुछ आता जाता नहीं कि हजार-हजार प्राणी घने अंधकार में डूबे हुए हैं। वे जिन्हें हमने कल देखा है, पृथ्वी पर हैं। उनकी उपस्थिति इसका यथेष्ट प्रमाण है कि एक दिन आयेगा जब अंधकार प्रकाश में रूपांतरित हो जायेगा और हे प्रभु, तेरा राज्य पृथ्वी पर सचमुच स्थापित होगा।" अब हम इस योग की पृष्ठभूमि में दोनों पक्षों की ओर से देखें - श्रीअरविन्द की ओर से और संसार की ओर से। साधारणतः जब योग की चर्चा होती है तो हम मनुष्य के उस प्रयत्न की चर्चा करते हैं, जिसके द्वारा वह दुख निवृत्ति की साधना करता, भगवान् को भिन्न-भिन्न रास्तों से पाने का उपाय करता है। इस उपाय के रास्ते मानव सत्ता के भिन्न भिन्न अंग-उपांगों से, विभिन्न स्तरों व शक्तियों के आश्रय से अपनाये जाते हैं। हृदय से हम प्रेम अथवा भक्ति के रास्ते को पकड़ते हैं जो मन से ज्ञान के रास्ते को शरीर और प्राण के माध्यम से भी चित्तवृत्तियों का निरोध कर, हम हठयोग अथवा राजयोग के द्वारा कुछ वैसी अवस्था की प्राप्ति का उपाय करते हैं जहां शरीर की सोयी शक्ति जग जाती और मानव चेतना इसी जड़भूमि में शांति और समाधान की रसधारा ढूंढ निकालती है। हम संसार चक्र में उलझी चंचल चेतना को एक वैसी स्थिति में उठा ले जाते है जहां चंचलता और विक्षेप डूब जाते हैं उस असंग शांति के अखंड नीरव प्रसार में जहां मात्र एक समाधान की अवस्था होती है; न प्रयत्न न ज्ञान, न प्रयत्न का करने वाला अथवा ज्ञान का जानने वाला। इसीलिये इस अवस्था को समाधि की अवस्था कहा गया है। यह समाधि ही साधारण अर्थ में इस प्रकार के योगों का चूडांत परिणाम है। इसमें स्थित आदमी भयंकर से भयंकर दुख संघात से विचलित नहीं होता - **यस्मिन् स्थितो न हि दुखेन गुरुणापि विचाल्यते**।

परन्तु यह व्यक्ति की बात है, उस आदमी की बात है जो संसार व्यूह से निकल कर समाज से निकल कर उस यात्रा पर जाना चाहता है जो असंगतता की यात्रा है, अकेले, साथी संगी लिये बिना, उस राह पर चलने की योजना है जो राह उसका निकटतम संगी व संबंधी देख या समझ नहीं सकता। इसीलिये प्रेम प्रवण राजकुमार सिद्धार्थ के लिये भी जो यशोधरा जैसी भार्या को पलंग पर नवजात शिशु के साथ सोयी छोड़कर अकेले आधी रात को राजप्रासाद से चल देना पड़ा और क्योंकि राह इतनी व्यक्तिगत है, इसीलिये गंतव्य भी अत्यंत ही व्यक्तिपरक है। आदमी पाता है मुक्ति उस भोग से छुटकारा व मोक्ष जिसको भोगने के लिये सारा संसार, सारा समाज पीछे बचा रह जाता है। संसार का भाग सब मिलकर भोगते हैं, मुक्तात्मा आध्यात्मिक रस का पान अकेला करता है-संसार से अति दूर, चेतना के किसी सुदूर लोक में जाकर प्रश्न शेष रह जाता है, "संसार क्या मात्र गोरखधंधा है? एक प्रसारित माया जाल है?" यहां अनगिनत आत्माओं को इसलिये डाल दिया गया है कि इनमें से कुछ-जिनकी संख्या फँसे हुए जीवों के अनुपात से अत्यंत ही नगण्य होगी कठिन परिश्रम से इससे निकल भागने का उपाय करेंगे और उनमें से कुछ निकल भी जायेंगे और यह बात अगर सच मान ली जाये तो यह खेल न केवल निष्प्रयोजन है, अनावश्यक और विनोदहीन भी है। यही कारण है कि जड़ विज्ञान की तेज से तेज रोशनी में जितना इस रहस्य को देखने की कोशिश आदमी करता है, उतना ही आगे का दृश्य घने अंधकार और रहस्य में डूबता नजर आता है। जड़ चेतना के आगे जीवन ग्रंथ एक प्रसारित युद्धकांड है जिसका अगला सर्ग है विध्वंस आदमी जीवित रहता है, फिर मर जाता है। विश्व भी आज है कल नहीं रहेगा। शून्यता में फैला हुआ यह विशाल आयोजन कल महाशून्यता में ही स्तिमित हो जायेगा।

पर यह हुई उस आंख की रोशनी जो केवल बाहर देखती है और हम यह जानते हैं कि हमारे देखने समझने के जो भिन्न-भिन्न स्तर हैं उनके परिणाम एक दूसरे से कितने भिन्न होते हैं; कभी कभी तो बिलकुल विपरीत। हम संसार में भिन्नता देखते हैं, लेकिन चेतना के ऊंचे शिखर पर यह भिन्नता एक मूलभूत एकत्व में लीन हो जाती है यह प्रसारित विश्व एक कारणभृत सुषुप्ति में डूब जाता है। विश्व प्रपंच एक अखंड अरूप में उपशमित हो जाता है उसी प्रकार प्रसारित दुखांत भी आनंद की प्रतीत गति, उसका पश्चाद्भावी परिणाम है। संसार किसी जड़ शक्ति की निष्प्रयोजन उछलकूद नहीं, स्वयंभू सत्ता की सचेतन लीला है। आनंद से प्रकट होता है। आनंद से विधृत है और आनंद की ओर गति कर रहा है। इस प्रकार हमारी खंडबुद्धि और खंडचेतना के लिये जो अप्रकट है, जो हमारी अवधारणा में नहीं आ सकता वह हमारी आत्म चेतना का गोपन सत्य है, हमारा सम्पूर्ण रहस्य है। परन्तु उस रहस्य को पकड़ने के लिये जो यंत्र चाहिये वह हमारी मन-बुद्धि के पास नहीं। हमारी मनोमय चेतना के पास ज्ञान के जो भी उपकरण हैं, जो भी यंत्र अथवा उपाय हैं, वे अपूर्ण हैं, इस प्राकृत जीवन के निजी लक्षणों से लाहित हैं और प्राकृत चेतना का दुर्लव्य सीमांकन हमारे ऊंचे-से-ऊंचे प्रयत्नों को पंगु बना देता है। हम जीवन के सम्पूर्ण रहस्य को अगर जान भी गये तो हमारा ज्ञान समाधि अथवा ऊंची चेतना के शिखर पर हो जाता है। जीवन का आंगन अंधकार में ही डूबा रह जाता है। इसीलिये जिन लोगों ने आत्मतत्व की गहराई में प्रवेश किया, मंदिर के गर्भगृह में जाकर देवता के दर्शन किये,

उनके लिये मंदिर के प्रांगन में फैला अंधकार और भी घना हो जाता है, इसका दुर्वह भार और भी अस्वीकार्य और कष्टकर। पुरुष का सर्वोत्तम पुरुषार्थ हो जाता है इस आंगन से भाग जाना, उस देवालय में प्रवेश, उस शिखर का आरोहण जहां सत्य शुद्ध है, निर्वाण है, अचल है, अलांछित है।

जीवन में हार-जीत का यह खेल हम जीत जाते हैं स्वयं जीवन को हारकर। परन्तु जीवन के इस खेल को जीवन को जीतकर खेला भी जा सकता है क्या? आज तक इसका उत्तर था "नहीं" श्रीअरविन्द कहते है 'हाँ' परन्तु शर्त यह है कि यह खेल तब दिव्य चेतना के धरातल पर खेला जाये। स्वयं भगवान् की चेतना में जीवन उन्नीत हो। श्रीअरविन्द ने कभी कहा था-"हमारा योग मनुष्य के लिये नहीं, भगवान् के लिये है।" आदमी का योग आदमी को युक्त करता है। भगवान् का यह योग विश्व में भगवान् को परिपूर्ण और प्रकट करेगा। जो भगवान् विश्व में अस्त दिखलायी देते हैं, उन्हें यहां उदय होना होगा।

यह श्रीअरविन्द का योग इसीलिये है कि यह दिव्य तपस्या उनकी तपस्या है। यह तपस्या है जीवन में दिव्य भगवती शक्ति के प्राकट्य और उनकी स्थापना के लिये स्वयं भगवती माता की दिव्य चेतना जब तक यहां प्रकट नहीं होती जीवन का दिव्य रूपान्तरण भी नहीं हो सकता। जो शक्ति विश्व और व्यक्ति दोनों का संचालन करती है, जो दोनों से अतीत, विश्वातीत, परात्पर महाशक्ति है उसी के प्राकट्य से, विश्व-विधान में उस चेतना के उदयन से, अवतरण से संभव हो सकता है जीवन का दिव्य रूपांतरण।

वर्तमान मनुष्य मनोमय चेतना का पार्थिव प्रतिफलन और परिणाम है। जढ़ता के रंगमंच पर प्राणिक विसृष्टि तब हुई जब प्राण का अवतरण हुआ। उसी प्रकार प्राणिक सृष्टि का मनोमय भूमिका में उन्नयन और विकास तब संभव हुआ जब मनोमय चेतना पृथ्वी पर अवतरित हुई। अब अतिमानसी दिव्य चेतना के अवतरण से ही अपूर्ण मानव के इसी कोष से चिन्मय पुरुष का प्राकट्य संभव होगा। इस अतिमानसी चेतना का अवतरण ही उस सुनहले दरवाजे को खोल सकता है जिसमें प्रवेश कर ही अदिव्य सृष्टि का दिव्य रूपांतरण संभव होगा।

पृथ्वी पर आज तक जो क्रमविकास सम्पन्न हो चुका है वह हुआ है विश्व व्यवस्था की स्वतःसंचालित धारा के रूप में। सचेतन प्रयास उसमें कहीं नहीं दिखलायी पड़ता। क्योंकि आज तक प्राणी समूहों में जो परिवर्तन हुए उसमें उनका सचेतन योगदान नहीं था। वे अवश थे; विश्व प्रकृति के स्वप्न संचार से बँधे हुए वे परिवर्तन क्रम के वाहक उपादान से और अधिक कुछ नहीं थे। परन्तु आज आदमी सचेतन है जो नये परिवर्तन का वाहक प्राणी भी है। वह अपने आपको जानता समझता है, अपने परिवेश को पहचानता, उसके निर्माण में हाथ बँटाता और जीवन विधान का सचेतन अंशभागी है। इसलिये वह नये परिवर्तन के गतिच्छंदों को समझ सकता है; उन्हें स्वीकार या अस्वीकार कर सकता है; उसकी क्रियान्विति में अरुचि या उत्साह दिखला सकता है। इस प्रकार वह भविष्यसिद्धि की गति

को तेज या मंथर बना सकता है। यही भविष्यसिद्धि है नये योग की सिद्धि । श्रीअरविन्द कहते हैं, "योग के द्वारा हम असत्य से निकल कर सत्य में, अशक्ति से शक्ति में, दुख-कष्ट से आनंद में, बंधन से निर्बन्ध मुक्त भाव में मृत्यु से अमृतत्त्व में, अंधकार से प्रकाश में, विक्षेप और अशुद्धि से शुद्धता में, अपूर्णता से पूर्णता में खंडित आत्मभाव से अखंड एकत्व में, माया से भगवान् में पहुंच सकते हैं। इसके अतिरिक्त योग का जो भी उपयोग है वह किन्हीं विशेष लाभों के लिये है जो छोटे मोटे और खंडित हैं और जो सर्वदा वांछनीय नहीं । केवल वही योग पूर्णयोग है जिसका लक्ष्य है भगवान् की समग्र उपलब्धि। भागवत परिपूर्णता की साधना ही पूर्णयोग है।"

भगवान् अपने परिपूर्ण भाव में जगत से सर्वथा बहिर्भूत और निरपेक्ष नहीं। यह सब भी वही हैं। **ईशावास्यमिदं सर्वम्**। अतः यह पूर्णयोग संसार से पराङ्मुखता का योग नहीं। यह हमें यहां से कहीं दूर ले जाकर **कूटस्थं अचलं ध्रुवं** में आत्महारा हो जाने का निमंत्रण नहीं देता; वरन् भगवान् की महिमा से खंडित उद्विग्न सांसारिक जीवन को पूर्ण और महिमान्वित कर देने का उपाय और मंत्र प्रदान करता है। यह जीवन से मुक्ति का योग नहीं, मुक्त जीवन का वह योग है जिसमें अहंकार और अविद्या के आधार पर गठित सुख-दुख के आपात भागों से भरपूर यह जीवन उस परितर्पण को प्राप्त करता है जिसका सपना प्रबुद्ध चेतना युगों से देखती आयी है और जिसका आधार होगी वह दिव्यता जो अहंकार विमूढ़ इस मनोमय चेतना से सर्वथा भिन्न है। विपरीत भी है। श्रीमाँ ने जब भी पीछे चलकर भविष्य का संकेत किया तो वे इसे अगला भविष्य (The Next Future) कहती थीं। इस The Next Future अगले भविष्य को समझकर ही हम श्रीअरविन्द के इस नूतन योग का आयाम थोड़ा समझ सकते हैं। आठ बजे रात के लिये नौ या दस बजे रात भविष्य है। बारह, एक दो बजे रात की सारी अवस्थाएं भविष्य हैं जो रात की ही अवस्थाएं हैं और उसी दिशा में बढ़ती हुई काल की बृहत्तर योजना की भिन्न-भिन्न घड़िया है। लेकिन सूर्योदय से पहले की घड़ी के लिये सूर्योदय के बाद की आने वाली घड़ी भविष्य होती हुई भी वही भविष्य नहीं है। यह एक दूसरा भविष्य है।

अविद्या चेतना की रात में गठित जो जीवन हमारा प्रकृत स्वरूप और स्वभाव का जीवन है, आने वाला जीवन उससे सर्वथा भिन्न होगा। इसलिये यह योग सिर्फ मुक्ति का योग नहीं, परितृप्त जीवन का दिव्य योग है भगवान् का योग है। क्योंकि इसका आधार अविद्या नहीं, दिव्य चेतना है। हम रात में रोशनी के लिये भिन्न भिन्न उपाय करते हैं, तरह-तरह की बत्तियां जलाते हैं। लेकिन उन सबका योगफल है रात, जमीन आसमान में फैला हुआ अंधकार रजनी की काया में ये बत्तियां बेलबूटे तो लगाती हैं, उसका रूपांतर नहीं करती। रूपांतर के लिए तो जिस महत्प्रकाश की आवश्यकता है, वह एक ही सूर्य के प्राचीमूल में उदय से सम्पन्न होती है। तब आसमान के सारे दीप बुझ जाते हैं और इस एक प्रकाश के उदय से जाग्रत प्राण का संदेश दिगंत में छा जाता है। अतिमानसी चेतना का उदय भी यही सूर्योदय है। यह मनुष्य की तपस्या का प्रकाश नहीं, भगवान् की तपस्या के रथ पर आया हुआ ज्योतिरुच्छ्वास है; सूर्योदय है।

मोह में डूबे हुए निराशा से ग्रसित अर्जुन ने जब श्रीकृष्ण से विरोधाभास की स्थिति से निकलने का उपाय पूछा तो श्रीकृष्ण ने उसे योगी बनने को कहा। **तस्मात् योगी भवार्जुन**। फिर इस योग का परिचय देते हुए उन्होंने उसे पुरातन योग कहा। यह पुरातन योग इस विकास की सनातन यात्रा का योग है। हम विकास के जिस मुहूर्त में जी रहे हैं, क्रम-विकास की जिस अवस्था में आज संसार दिखलायी पड़ रहा है वह है विकास के नये चक्र के प्रवर्तन की अवस्था। अर्जुन को जिस मुहूर्त में योग दिया गया था वह था उसके व्यक्तिगत संकट का मुहूर्त्त वह तत्कालीन जीवनधारा व सभ्यता के संकट का मुहूर्त भी था। युग-संधि का काल था। श्रीकृष्ण ने कहा था- "मैं युग-युग में अवतार लेता हूँ" **'संभवामि युगे युगे'**।

आज श्रीअरविन्द के योग के उदय का मुहूर्त भी जीवन के सर्वांग संकट का मुहूर्त्त है। इसलिये यह भगवान् के प्राकट्य का मुहूर्त्त देवमुहूर्त है। आज से करीब सवा सौ वर्ष पहले १८७२ ईस्वी में श्रीअरविन्द का जन्म हुआ। वे भारत में पैदा हुए जो भगवान् के आभिमुख्य का देश है। शिक्षा उनकी इंग्लैंड में हुई। शिक्षाकाल में पश्चिमी धारा के सर्वोच्च तत्त्वों को समेटे वे जब भारत आ रहे थे तब उनकी आयु इक्कीस वर्ष की थी। यहां आकर भारतीय आध्यात्मिकता के निगूढ़ मर्म को उन्होंने ढूंढ निकाला, जिसके बिना मनुष्य दो पैरों वाला जीवधारी तो है, मनोमय पुरुष अथवा देवपुत्र नहीं। पश्चिम और पूरब के जीवनतत्त्वों के मूर्तिमान समन्वय फ्रांसीसी विचारक और साहित्यकार रोमा रोला ने श्रीअरविन्द को आज तक के ऐसे समन्वय का सर्वोच्च शिखर कहा है- श्री अरविन्द एक वैसे महापुरुष के रूप में गोचर होते हैं जिनसे बँधा हुआ है मानवजाति का भविष्य। क्योंकि वही संकेत देते हैं उन समस्याओं का जिनसे मानव आतंकित होने वाला था तथा उनके सर्वांगीण समाधान का भी जिसके अभाव में वह अपने जीवन के कुरुक्षेत्र में कभी जयलाभ नहीं कर सकता था और इस पराजय का अर्थ था सर्वनाश, प्रलय। श्रीअरविन्द का बचाव करते हुए देशबंधु चितरंजन ने कहा था कि वे मानवमात्र के प्रेमी और सखा थे। फिर उनके इस सुहृदभाव के ऊपर लगी हुई देवत्व की मुहर जिसमें अंकित है परात्पर से आयी हुई निर्णायक क्रिया ।

श्री अरविन्द के साथ हो लेती हैं फ्रांस से चलकर आयी हुई माताजी । श्रीमां के शब्दों में फ्रांस उनके जन्म और शिक्षा का देश है, किन्तु भारत है उनकी अंतरात्मा का देश। इस तरह श्रीअरविन्द और श्रीमाँ - पुरुष और शक्ति - मिलकर शुरू करते हैं वह योग जो जीवन की सर्वांगीण पूर्णता का योग है। यह व्यक्ति विशेष का मुक्तिपंथ नहीं, स्वयं परात्पर के द्वारा आदिष्ट जीवन विधान की सम्पूर्ण सिद्धि का पंथ है।

१९१४ से शुरू हुआ है जीवन का वह भूचाल जो अब तक बढ़ता ही चला जाता है। किन्तु संकट का यही मुहूर्त विश्व के सर्वांग योग का मुहूर्त भी है। अर्जुन जब सर्वतोभावेन संकटग्रस्त हो गया तो भगवान् ने उसे योग दिया, साथ ही आदेश भी **'योगस्थः कुरु कर्माणि'**- योग में रहते हुए कर्म करो। उद्धार पाने का आश्वासन भी उन्होंने दिया **वृजिन संतरिष्यसि**। अर्जुन में अगर संकट मूर्तिमान हुआ

था तो श्रीकृष्ण में समाधान। आज के विश्वसंकट का समाधान भी श्रीअरविन्द में मूर्तिमान हुआ है। श्रीमां का स्वरूप है इसका क्रियात्मक प्रतिफलन । १९५० ईस्वी में जब श्रीअरविन्द ने शरीर छोड़ दिया तो उनके पार्थिव विग्रह की अभ्यर्थना में लिखे वाक्य में श्रीमां ने कहा कि इस शरीर में श्रीअरविन्द ने सब कुछ आयत कर लिया था - Achieved all !

इस तरह श्रीअरविन्द नयी सृष्टि के वह विधाता हैं जिन्होंने न केवल संकल्प किया है, योग दिया है वरन् उस संकल्प और योग को साँसद्ध भी किया है।

प्रश्न यह है कि मनुष्य इस साहसिक यात्रा में कहां हैं? क्या कर रहा है?

हम देखते हैं श्रीअरविन्द की इस शताब्दी के भीतर आदमी साधारण चूल्हे की आग से चलकर विद्युताग्नि को पार कर सौर ऊर्जा के धरातल पर पांव रख चुका है। परन्तु इन अग्नियों के मूल में है वह अग्निशक्ति जिनसे ये सभी जीवित और उद्भासित हैं-**तमेव भान्तमनुभाति सर्वम्**। चेतना के इस आग्नेय पंथ का वही शेष पर्व है सम्पूर्ण चेतना का पर्व जो सम्पूर्ण शक्ति का पर्व भी है। श्रीअरविन्द के शब्दों में यह अतिमानसी चेतना न केवल प्रज्ञादृष्टि है, प्रज्ञावीर्य भी है। इसी से आप्लावित मनुष्य की चेतना संकल्प और संसिद्धि के बीच की खाई को पाट सकेगी। आज तक आदमी के जीवन के मर्मभूत सपने सत्य के सपने, प्रकाश और अमृतत्त्व के सपने मात्र सपने इसीलिये बने रहे कि वह जिस चेतना के धरातल पर खड़ा है, वहां संकल्प है सिद्धि नहीं, सपना है उसका जाग्रत सत्य नहीं। परन्तु अतिमानसी चेतना में दोनों की एक साथ सहवेदना होती है, दोनों सहचर सत्य हैं-**वेदोभयं सह**। मनुष्य को जो योग आज दिया जा रहा है वह है मनोमय भूमिका से अतिमानस की ओर उसके उन्नयन और उन्मेष का योग ।

(क्रमशः – आगे अगले अंक में)

श्रीअरविन्द

श्रीअरविन्द हमे बतलाने आये थे-
“सत्य को पाने के लिए पार्थिवता को
छोड़ना आवश्यक नहीं है, आत्मा की
प्राप्ति के लिए जीवन का त्याग जरुरी
नहीं है, दिव्यता के साथ सम्बन्ध
जोड़ने के लिए दुनिया को न ही
सीमित विश्वासों के साथ जीने की।
भगवान हर कहीं, हर वस्तु में है
और यदि वह गुप्त है, तो इसीलिए
कि हम उसे खोजने का कष्ट उठाना
नहीं चाहते।“

-श्रीमाँ (कर्मधारा 1972)

प्रगति

नमस्कार, जैसा कि हम अपनी पिछली वार्ताओं में सुनते आ रहे हैं कि श्री मॉ ने अपने प्रतीक चिह्न में किन-किन ऐसे गुणों का विश्लेषण किया है जिन्हें आधार मानकर हम न केवल भौतिक जीवन में बल्कि आध्यात्मिक जीवन की तरफ भी सुगम कदमों से बढ़ सकते हैं, जी हां आज का हमारा जो गुण हमने चुना है वह बहुत ही महत्वपूर्ण गुण है, और वह है प्रगति । गति ही जीवन है, प्रगति आगे बढ़ना, निरंतर आगे बढ़ते जाना यह एक ऐसा गुण है जो हमें निरंतर विकास की तरफ अग्रसर करता है प्रगति अनिवार्य है बल्कि श्री माँ तो कहती हैं कि हमारा जो यह पार्थिव जीवन है इसका मूल उद्देश्य ही प्रगति करना है इस पृथ्वी पर आना बहुत जरूरी है, हर स्तर के विकास के लिए सामान्य भौतिक जीवन वह होता है ,भौतिकता की प्रगति के लिए जो स्थूल रूप में हमें दिखाई देता है लेकिन आंतरिक प्रगति ,जिससे हम उस उद्देश्य की तरफ बढ़ते हैं जो हमारे जीवन का का एकमात्र लक्ष्य है, और वह लक्ष्य है ईश्वर के निकट जाना । सच्ची प्रगति वही है जो हमें निरंतर ईश्वर के निकट ले जाती है क्योंकि जीवन स्पष्ट रूप से ही माना जाता है कि अंधकार और प्रकाश के बीच ,जीवन और मृत्यु के बीच उन्नति और पतन के बीच एक चुनाव है और श्री मां कहती हैं हर व्यक्ति इस चुनाव के लिए पूरी तरह आजाद है, गतिशीलता श्री अरविंद के योग का एक विशेष गुण है बल्कि कहूँ तो अनिवार्य शर्त है गतिशील, सक्रिय रूप से गतिशील होते रहना यह एक अनिवार्य शर्त है लेकिन उसके साथ और बहुत सारी सावधानियां और बहुत सारे नियम स्वत: ही जुड़ जाते हैं

गतिशील किस दिशा में, गतिशील किस तरफ,जी हाँ गतिशीलता के साथ सजग होना ,सचेतन होना एक तरह से अपने लक्ष्य के प्रति स्पष्ट होना यह बहुत जरूरी है यहां हम जो बात कर रहे हैं वह खास तौर पर आंतरिक प्रगति की करेंगे आंतरिक प्रगति तभी हो सकती है जब हम अपने मूल अस्तित्व से अपनी वास्तविक सत्ता से परिचित हो जाए और हम जानते हैं कि हमारी वास्तविक सत्ता जो है हम मूलतः जो है उसकी प्रगति के लिए ईश्वर ने हमें जो यंत्र दिए हैं वह है हमारे मन प्राण और हमारा शरीर ,भौतिक जीवन में भौतिकता की प्रगति के साथ-साथ उस प्रगति में भी उस गहराई को याद रखना, गहराई क्या है कि हमें अपने आप को प्रगतिशील बनाना है ताकि यह शरीर भी उस चेतना को महसूस करने लगे ,जो परम सत्ता की चेतना है हमारे कोशाणु, हमारी मांसपेशियां ,हमारा शरीर इतना मजबूत हो ,इतना सशक्त हो साथ ही संवेदनशील हो जो कि उसे परम सत्ता के हर संकेत को ग्रहण कर सके यानी ग्रहणशीलता किसी भी स्तर की प्रगति के लिए एक अनिवार्य गुण है ग्रहणशीलता पर हम पहले ही बात कर चुके हैं ऐसे में भौतिक प्रगति की तरफ अगर हम प्रयास करते हैं तो हम देखते हैं कि वह एक अनिवार्य चीज तो है ही पर उसमें सजगता और सही विधि का प्रयोग बहुत जरूरी है श्री माँ ने इसीलिए सच्ची शिक्षा के बारे में बोलते समय बार-बार कहा है कि भौतिक शिक्षा, शारीरिक शिक्षा ,फिजिकल एजुकेशन ,बहुत जरूरी है यह शरीर ही वह आश्रय है, यह शरीर

ही वह आधार बनता है ,जो हमें आत्मिक विकास के लिए आंतरिक प्रगति के लिए सहायता करता है दूसरे यंत्र हमारे मन और प्राण जो है इनके अनुशासन की बात हम कई बार कर चुके हैं लेकिन यह दोनों भी अपने आवेगों अपनी वैचारिकता के बाद भी ,बिना इस शरीर की सहायता के कुछ नहीं कर पाते ,तो मन की प्रगति ,प्राण की प्रगति ,शरीर की प्रगति ,क्या है यह प्रगति ,यह अगर हम श्री मॉ की पुस्तक शिक्षा का अध्ययन करें तो हमें बहुत सारे रास्ते, बहुत सारे संकेत मिलते हैं मां का मार्गदर्शन हर तरफ प्राप्त है एक शिक्षित मन , एक शिक्षित प्राण ,बल्कि एक प्रशिक्षित मन और प्राण अपनी उन कमजोरियों से बच सकता है जिनके कारण वह इस शरीर को मार्ग से भटकाता है शरीर को अपने दबाव में रखकर उसका दुरुपयोग करता है उन दोनों को प्रशिक्षित करते हुए हम शरीर को उनके अत्याचारों से बचा सकते हैं साथ ही यदि हम अपने शरीर को इतना संवेदनशील बना ले , इतना सचेतन बनाने के लिए प्रयास करते रहे कि वह स्वयं अपने आप को निर्णय लेने लायक बना ले वर्तमान स्थितियों में हमारा शरीर जड़ सा है वह इन दोनों के इशारों पर नाचता है पर यह सच है कि उसमें वह क्षमता है कि वह अपनी चेतना का विकास कर सकता है ,पांडिचेरी आश्रम के विद्यालय में जब भी खेलकूद की प्रतियोगिताएं होती थी तो मां ने कई बार यह बताया कि कैसे इन खेलों के माध्यम से इस शारीरिक शिक्षा के द्वारा हम आंतरिक विकास की ओर अग्रसर हो सकते हैं, बाह्य रूप से हमारा शरीर क्रियाशील है, हम खेल रहे हैं लेकिन साथ-साथ जहां शरीर की मांसपेशियां विकसित हो रही है,मजबूत हो रही हैं, वहीं हमारा मन और हमारा प्राण भी सक्रिय है कैसे हम उस समय उच्च चेतना के साथ परम शक्ति के आवाहन के द्वारा इसी खेल की प्रक्रिया को प्रगति का रास्ता बना लेते हैं पुरानी विद्यालय की पत्रिकाएं अगर हम देखें तो उसमें कई जगह मां ने कहा है इस पूरे एथलेटिक्स कंपटीशन के समय इन शारीरिक प्रतियोगिताओं के समय मैं तुम्हारे साथ हूं और मैं तुम तक बल ,शक्ति ,प्रकाश ,चेतना इन्हें निरंतर भेजती रहूंगी ताकि हर कोई अपनी अपनी ग्रहण शक्ति के हिसाब से सफलता पा सके ,हर एक का सच्चा प्रयास इतना सफल हो और सभी को सफलता का शीश मुकुट प्राप्त हो ,यह ऐसे कुछ शब्द मॉ ने कहे थे जो स्पष्ट बताता है कि प्रतियोगिता के साथ भी जब उच्च चेतना से जुड़ा हुआ मन विचार करता है उच्च चेतना से जुड़ा हुआ मन विचार करता हैं , प्राण इच्छा करता है तो वह अपनी अधिक से अधिक अच्छा करने के लिए शरीर को प्रेरित करता है निम्न प्राणिक चेतना हमेशा अपनी जीत दूसरों की पराजय यह इच्छा करती है जबकि उच्च चेतना से प्रभावित प्राण, अपने चैत्य से जुड़ा हुआ प्राण ,वह हमेशा अपना सर्वोत्तम प्रदर्शन अपने आप को अधिक से अधिक विकसित करने की बात करता है एक विकसित मन एक प्रशिक्षित मन यही सोचता है कि करते समय यह खेल खेलते समय इस शरीर को कितनी प्रगति मिले, वह प्रगति होती है, हम कल कहां थे, क्या हम आज उससे बेहतर हैं वह जीतने की इच्छा से ज्यादा वह इस बात का प्रयास करता है कि वह खेल के कौशल को पिछले दिन से या पिछली बार से आज बेहतर कर सके इस तरह हम धीरे-धीरे प्रगतिशील बनते हैं श्री माँ ने कहा है ,कि मैं हमेशा अपने से बेहतर खिलाड़ियों के साथ खेलती थी मैं कभी जीतती नहीं थी पर मैंने निरंतर अपने खेल में विकास किया, प्रगति की, क्योंकि जीत हमें अहंकार में डाल देती है वह हमारी प्रगति को कई बार रोक देती है जबकि अगर अपने से अच्छे खिलाड़ी को हम स्वस्थ मानसिकता से देखें तो हम उसकी

सराहना करते हैं उसके खेल की विशेषताओं को ग्रहण करते हैं तो क्या हम सच्ची प्रगति नहीं करते इसी तरह मौके मौके पर अपनी परिस्थितियों में अगर हम सचेतन रहे कि हमारा उद्देश्य आगे बढना है, विकास करना है तो हम प्रगति करते हैं लेकिन हम निम्न प्राणिक इच्छाओं के वशीभूत होते हैं तो हम रास्ता भटक जाते हैं हम केवल उसके परिणाम में सोचते रह जाते हैं और जब हमारा ध्यान अपने लक्ष्य से भटकता है जो कि विकास है तो हम अपना सर्वोत्तम नहीं दे पाते इसलिए प्रगति करने के लिए नीरवता ,सचेतनता और उच्च चेतना के प्रति खुलना बहुत जरूरी है हमारी इस सचेतनता को थोड़ा सा सहारा मिल जाता है अगर हमारा दृष्टिकोण हमारी वैचारिकता सकारात्मक हो अगर हम विश्वास कर ले की कोई भी परिस्थिति हो ,कैसी भी परिस्थिति हो दुखद-सुखद कितना भी कठिन काम हो सब कुछ है मूल रूप से हमें कुछ सिखाने के लिए और जब हमें कुछ सीखना है और इस सीखने वाली प्रवृत्ति से जब हम कूदते हैं किसी काम में तो वह हमें हमेशा सकारात्मक अनुभव देता है ,अगर हम किसी काम में सफल होते हैं तो हमें आगे बढ़ाने की प्रेरणा मिलती है अगर हम असफल भी होते हैं तो हमें एक अनुभव मिलता है उस समय हमारा दृष्टिकोण यह होना चाहिए कि हमें कहां पर कठिनाई हुई थी कहां हम असफल रहे कहां हमसे कोई कमी रह गई और उस कमी को पहचानना उस कमी को समझने का प्रयास करना साथ ही निरंतर चरम प्रभु परम सत्ता की शक्ति का आवाहन या सहयोग और सहायता की मांग अगर हम इस तरह से काम करते हैं तो हमें कोई काम दुष्कर नहीं लगता क्योंकि हम जानते हैं कि अगर असफल भी रहे तो उसके मूल में भी हमें सिखाना है संभवत हम तैयार नहीं है और यह तैयार नहीं होना एक बहुत बड़ी शिक्षा है एक बहुत बड़ा सूत्र है एक बहुत बड़ा फार्मूला है कि अगर हम तैयार नहीं तो हमें अभी रुकना होगा श्री माँ एक जगह रहती है कि ऊंची ऊंची चट्टानों के बीच में, भी प्रगति करने के लिए जो चीज़ चाहिए तो वह है साहस, छलांग । छलांग लगाने का साहस, लेकिन इसको वह क्षैतिज़िय प्रगति कहती हैं, वह कहती है इस छलांग लगाने के पहले तुम्हें तैयार होना चाहिए क्योंकि एक बार तुमने ऊपर जाकर अगर छलांग लगाई और उससे भी बड़ी छलांग अगर लगानी है ,तो तुम्हें फिर नीचे उतरना पड़ेगा तुम वहां से नहीं लगा सकते, इसलिए एक ही बार इस छलांग के लिए तब प्रयास करो जब तुम अपनी पूरी तैयारी कर चुके हो ,भले ही वह आध्यात्मिक जीवन में जाना ही क्यों ना हो,वह भी एक बहुत बड़ी छलाँग है उसके पहले अपने को भौतिक रूप से ,मानसिक रूप से, प्राणिक रूप से अच्छी तरह से तैयार करना चाहिए, और इस तैयारी में एक चरण के बाद दूसरा चरण निरंतर गतिशील रहना चाहिए किस तरफ जाना है, कब जाना है, कैसे जाना है और किसके मार्गदर्शन में जाना है इन सब चीजों को यदि हम सोच कर चलते हैं तो कई बार सहायता मांगते मांगते हम अपने अहम से बच जाते हैं प्रगतिशीलता को अपनाने के लिए जो श्री माँ कहती हैं ,वह कहती हैं ,विनय बहुत जरूरी है तभी तुम मांग पाते हैं अगर सच्ची प्रगति की हमारे अंदर अभीप्सा है तो उसे याद रखना होगा

भौतिक मानसिक और प्राणिक रूप से अपने को तैयार कर लेते हैं तो यह सहज हो जाता है कि हम अपनी आंतरिक चेतना से अपने अंतरात्मा से जुड़ जाते हैं जो सही रास्ता दिखाती है और फिर हमें पता भी नहीं चलता कि हम कब आध्यात्मिक रूप से प्रगतिशील बन जाते हैं आध्यात्मिक प्रगति

का मतलब ही है यह हैं कि हम ईश्वर की ओर अग्रसर हो रहे हैं और उसके लिए तो जीवन में कोई भी परिस्थिति आए और हमारी तैयारी का मतलब ही यही है कि अब हमने अपने को खोल दिया है ईश्वरीय प्रेरणा के सामने ईश्वरीय सहायताके सामने अपने आप को पूरी तरह से छोड़ दिया है सब कुछ उसके ऊपर, फिर चाहे अच्छी परीस्थिति हो चाहे बुरी परिस्थिति हो ,अच्छा परिणाम हो चाहे बुरा परिणाम हो ,यह हमारे भौतिक मन के निर्णय हो सकते हैं इसलिए जो भी परिणाम होगा उसके प्रति एक सहज स्वीकृति होनी चाहिए ऐसे में आई हुई कठिनाइयों को प्रगति का साधन बना लेना ,ही सही तरीका होता है और यह प्रवृत्ति हमारे अंदर विकसित होती है अगर हमारे अंदर ईश्वर के प्रति समर्पण होता है अगर हम यह मानकर चलते हैं कि यह जो कठिनाई आई है यह कोई परीक्षा है इसके बाद जो कुछ सामने आ रहा है वह ईश्वर का संकेत हो सकता है बहुत पुरानी बात है ,एक किसान जा रहा था अपने बैल को लेकर चलते-चलते पता नहीं क्या हुआ अचानक ठोकर लगी और उसका बैल कुएं में गिर गया ,कुआं काफी गहरा था बैल काफी डरा हुआ था ,उसकी दुख भरी करुणा भरी आवाज सुनाई दे रही थी किसान रुक तो गया, उसका बैल था इतने दिनों से बैल उसके पास था, लेकिन झांक कर देखा ,उन्हें लगा कि वह कुछ नहीं कर पाएगा वह बैल को नहीं निकाल पाएगा किसान चाहता था उसे निकालना लेकिन उसके साथ दो लोग और थे तीनों बातें करने लगे उन्होंने सोचा अब क्या करें थोड़ी देर बाद इस निष्कर्ष पर पहुंचे वैसे भी बैल काफी बूढ़ा हो गया था, ज्यादा दिन काम का नहीं था अब उसके पीछे परेशान होने का कोई फायदा नहीं था ,तीनों ने सोचा चलो बैल की यही समाधि बना दी जाए और आसपास नजर दौड़ाई वहां कुछ फावड़े पड़े थे ,शायद कुछ लोग काम कर रहे थे

उन्होंने फावड़ा उठाया ,मिट्टी खोदी और मिट्टी उठा उठा कर कुएं में डालने लगे ,बैल बेचारा वैसे ही दुखी था उसे अपने प्राणों का संकट नजर आ रहा था ऊपर से मिट्टी की बौछार मिट्टी गिरी उसके ऊपर, फिर मिट्टी गिरी बैल को लगा ऐसे तो मैं इसके भी नीचे दब जाऊंगा हठात उसको कुछ विचार आया उसने जोर से अपना सिर हिलाया और काफी मिट्टी नीचे झड़ गई फिर मिट्टी गिरी उसने फिर सर हिलाया अब तो ऐसा लगा कि उसे कोई रास्ता मिल गया है मिट्टी गिरती जाती वह सिर हिलता जाता मिट्टी नीचे और उसके पैरों के नीचे जमीन तैयार करने लगी , कुछ ऐसा हुआ कि अब उसकी मिट्टी के गिरने का इंतजार रहता वह उसे झटकता , मिट्टी नीचे जमा होती गई ,पानी के तल से वह बैल ऊपर उठने लगा किसान और उसके साथी मिट्टी गिरा रहे थे उनका यह सोचना था कि बैल अब वही समाधिस्थ हो जाएगा ,लेकिन हो कुछ और रहा था ,धीरे-धीरे मिट्टी ने उसे बैल के लिए जमीन तैयार कर दी ऐसी जमीन जो धीरे-धीरे उसे ऊपर उठा रही थी एक समय आया की बैल कुएं की मुंडेर तक पहुंच गया उसने जोर की छलांग लगाई, और वह जा और वह जा अब उसने मुड़कर किसान की तरफ देखा भी नहीं बैल एक साधारण सा प्राणी है जिसमें कोई आध्यात्मिकता नहीं, अपनी जान बचाने का एक बल है ,इच्छा शक्ति है ,आध्यात्मिक प्रगति की तरफ जब हम जाते हैं तो इससे बढ़कर बहुत सारी कठिनाइयां आती हैं यहां तो सीधे-सीधे कुएं में गिरना ,स्थूल रूप से मिट्टी का आना यानी अपने ऊपर पड़ी विपत्ति जो नजर आ रही थी आध्यात्मिक प्रगति में जो बाधाए आती हैं वह बड़ी ही सूक्ष्म भी होती हैं ,विशेष तौर पर श्री माँ हमें समझाती हैं ,सिखाती हैं कि हमारा मन और हमारा

प्राण यह दोनों ही बड़े जिद्दी होते हैं विशेष कर मन बड़ा अहंकारमय होता है वह सब कुछ अपने लिए चाहता है उसे हर बात का श्रेय अपने ऊपर चाहिए वह सब कुछ कराता है उसकी वैचारिकता जहां रास्ता खोजती है वहीं उसकी वैचारिकता उसको दम्भी भी बना देती है लोग तपस्या करते हैं माँ कहती है मुझे ऐसे बहुत सारे लोग मिले जो बहुत प्रगति कर गए थे प्रगति के अंतिम चरण, यानी ईश्वर को पाने सत्य को जानने के अंतिम क्षण पर थे ,एक कदम और आगे बढाना था लेकिन अचानक उनके अंदर कहीं ना कहीं से यह अहंकार घुस जाता है ओह देखो मैंने कितना कर लिया अरे सब कुछ ठीक हो गया और वह कहती है बस ऐसा लगता है विरोधी शक्तियों को इसी का तो इंतजार था वे मुस्कुरा पड़ती है उसे रास्ते से वह उसके अंदर घुस जाती हैं और यह अहंकार अंदर पूरी तरह से छा जाता है एक कदम बढ़ाना रह गया था पर वह नहीं कर पाता कारण सिर्फ यही है मन का अहंकारमय होना ,वह यह स्वीकार नहीं कर पाता कि जो कुछ हो रहा है या जो कुछ किया गया वह उसने नहीं किया ,अगर उन्हें यह कहा जाए ,ऐसे लोगों को जो बहुत प्रगति कर चुके हैं जो बड़े तपस्वी हो गए हैं ,उन्हें यह कहा जाए कि तुम्हारे अंदर की जो अभीप्सा है वह तक तुम्हारी नहीं है, दर असल ईश्वर ही तुम्हारे अंदर यह अभीप्सा कर रहे हैं उनके अंदर एक अहंकार सर उठाता है मन विद्रोह कर देता है तो फिर ईश्वर ही करें ना ,मैं नहीं करता कुछ मन विद्रोह कर देता है ऐसा ही प्राण के साथ होता है मन और प्राण दोनों जब विद्रोही हो जाते हैं तो उनका चरणदास यह शरीर, यह भी साथ नहीं देता और मानव जीवन की उपलब्धि वही की वहीं रुक जाती है जिसके लिए मानव जन्म होता है वह आगे नहीं बढ़ता आगे नहीं बढ़ता मतलब प्रगति अवरुद्ध हो जाती है मन के अहंकार को इसी प्रकार बढते देना यानि हम विरोधी शक्ति की गिरफ्त में आ रहे हैं विरोधी शक्तियां इसी के इंतजार में होती हैं इसीलिए माँ कहती हैं कि प्रगति के लिए बहुत अनिवार्य गुण है निष्कपटता यानी सच्चाई के साथ प्रयास करना, विनय विनम्रता ,अध्यावव्यवसाय ,निरंतर प्रयास करना और उसके बाद सच्ची प्रगति के लिए प्रयास की सच्ची प्यास तभी हम आगे बढ़ सकते हैं वरना प्रगति कहां होती है हमें पता नहीं चलता कहां रुकती , हम नहीं जान पाते, प्रगतिशील बनने के लिए या प्रगति की निरंतरता को बनाए रखने का एक बहुत अच्छा साधन है कर्म ,कर्म योग से बढ़कर योग पथ का दूसरा निश्चित मार्ग नहीं मिलता अगर हम काम करते हैं तो हमारे यह तीनों यंत्र मन, प्राण और शरीर उसमे सकारात्मक रूप से सक्रिय रहते हैं उन्हें और कहीं जाने की फुर्सत नहीं मिलती बशर्ते वह अपने चैत्य से जुड़े ,बशर्ते उनका दृष्टिकोण सकारात्मक हो बशर्ते उनके अंदर ईश्वर तक जाने की इच्छा हो ईश्वर को पाना ही उनका लक्ष्य हो तभी प्रगति का मार्ग सही दिशा में निरंतर चलता रहता है

काम नहीं करना और मन को समझा देना कि हम तो ध्यान कर रहे हैं हम एकाग्र होने का प्रयास कर रहे हैं हम तो ईश्वर का चिंतन कर रहे हैं भजन कर रहे हैं यह कहीं ना कहीं तमस का द्वार खोल देता है सिर्फ ध्यान करने से ध्यान के अंदर भी कहीं ना कहीं यह तमस अहंकार का प्रवेश कर देता है और अहंकार जहां है वहां पर कहां ईश्वर,अहम होने की जो यह भावना है अहंकार की जो यह भावना है अपने अस्तित्व की जो यह जिद है वह बड़ी ही हानिकारक है जो बड़े-बड़े तपस्वियों को भटका देता है वह मानना ही नहीं चाहते कि वह खुद नहीं कर रहे उनका सारा उत्साह खत्म हो जाता है अगर उनके अस्तित्व को पुष्टि न मिले अगर अपने कर्म का श्रेय उन्हें ना मिले और जबकि

आध्यात्मिक प्रगति की मांग है समर्पण , संपूर्ण समर्पण काम भी ईश्वर का, काम का किया जाना भी ईश्वर के द्वारा और काम का लक्ष्य भी ईश्वर को पाना ,सच्ची प्रगति तो यही है और इसीलिए वह कहती हैं कि यह जो पार्थिव जीवन है वह एक सुयोग है प्रगति करने का ,सच्ची प्रगति जो ईश्वर के निकट ले जाती हैं अपने निम्न चेतना की, निम्न प्राणिक, छोटी-मोटी तुच्छ इच्छाओं की पूर्ति करते रहने कितनी बड़ी बेवकूफी है ,कितनी बड़ी मूर्खता है क्योंकि जीवन बहुत छोटा है इस लघु जीवन में प्रगति इतनी बड़ी है जो हमें करनी है जब हम काम करते रहते हैं काम की पूर्णता को देखते हैं उसकी परफेक्शन को निहारते हैं ,उससे हमें पता चलता है कि हम प्रगति कर रहे हैं या नहीं क्योंकि कई बार हर व्यक्ति सूक्ष्म स्तरीय प्रगति को नहीं पहचान पाता हर एक का अपना स्तर होता है तो उसको कहीं ना कहीं यह आश्वासन मिलता रहे कि यह वह प्रगति कर रहा है इससे उसका प्रोत्साहन बढ़ता है इसलिए जरूरी होता है एक सीमा तक ,माँ ने प्रतियोगिताओं को भी इसीलिए स्वीकार लिया था क्योंकि प्रतियोगिताएं कहीं ना कहीं उत्तेजना देती हैं और यह उत्तेजना से बल मिलता है जिसके कारण अधिक से अधिक प्रयास करने की प्रेरणा आती है और फलत: प्रगति अधिकतम होने लगती है पर धीरे-धीरे जब हम प्रगति के सूक्ष्म स्तर में उतरते हैं जब गहराई में जाते हैं आंतरिक प्रगति की ओर बढ़ने लगते हैं तो यही उत्साह हमें नीरवता की तरफ ले जाना चाहिए और नीरवता के अंदर ही ईश्वरीय प्रेरणा होती है

यह सहायता होती है जिसके कारण हम प्रगति करते हैं प्रगति करना प्रगति की निरंतरता को बनाए रखना उसके अंदर उच्च चेतना का आवाहन करना उसके प्रति समर्पित होना और अपने लक्ष्य पर दृष्टि गढ़ाएं रखना कि हमारी सच्ची प्रगति ईश्वर को पाना है ,ईश्वर के निकट जाना है ,अपने आप को दिव्य बनाना है कम से कम श्री अरविंद का योग पथ श्री मां का मार्गदर्शन हमको उसी रास्ते पर ले जाएगा जहां पर उन्होंने अपना कार्य निश्चित किया है हमें उसे अतिमानस के लिए अपने को तैयार करना है भौतिक मानसिक ,प्राणिक हर स्तर पर कहीं ना कहीं एकाग्रता ध्यान और नीरवता को पाने का अभ्यास करते हुए हमें अंदर जाकर अपने चैत्य को पाना है उससे जुड़े रहना है उसका शासन अपने मन प्राण और शरीर इन तीनों प्रमुख यंत्रों पर स्वीकार करना है या इन तीनों को बाध्य करना है कि वह चैत्य की अधीनता को स्वीकार कर ले और इस प्रकार वे ईश्वर के एक सच्चे यंत्र बने जो इस पार्थिव जीवन के मूल लक्ष्य की तरफ हमको अग्रसर कर सके ,अपनी प्रगति के प्रति निरंतर प्रयत्नशील रहे एक समय भी ऐसा ना हो जब हम थक जाएं क्योंकि श्री मां कहती हैं तुम्हारा वह वर्ष जब तुम तुमने कोई प्रगति नहीं की, वही तुम्हें बूढ़ा बनता है बुढ़ापा और क्या है बुढ़ापा और क्या है सिवाय इसके कि ,जो हमें एहसास करा दे अपनी असमर्थता का ,अहसास करा दे निर्बलता का विवशता का , भौतिक शरीर की अपनी सीमाओं को भी सहज रूप से स्वीकारना उसके कोशानुओ को निरंतर प्रगति की तरफ चेतना की तरफ सजग बनाते रहने का प्रयास करना यही तो प्रगति है हर प्रगति को अपनाए हर प्रगति के लिए प्रयास करें,सचेतन प्रयास करें लेकिन लक्ष्य यही रहना चाहिए कि यह गति उसे प्रगति की ओर जाए जो हमें ईश्वर के निकट ले जाए

धन्यवाद

आश्रम-गतिविधियाँ

1. 10 नवम्बर चित्र प्रदर्शनी का उदघाटन

संध्या 4:00 प्रसाद ब्लोच पर अघनी द्वारा चित्रित सावित्री से प्रेरित चित्रों की प्रदर्शनी का उदघाटन

2. 12 नवम्बर दीवाली का उत्सव
प्रातः 8:30 बजे खेल का आयोजन
संध्या 6:30 बजे समाधि क्षेत्र में अभिप्सा का प्रकाश।
संध्या 6:45 से 7:30 आश्रम की गायक मंडली द्वारा संगीत प्रस्तुति एयवम तारा दीदी का "महाकाली" से पाठ निषेधाज्ञा को घ्यान में रखते हुए अशर्म में आतिशबाज़ी पूरी तरह प्रतिबंधित रही

3. 15 नवम्बर 7वां अंतरराष्ट्रीय टिपिताका मंत्रोचारण समारोह
प्रातः 8:30 अंतरराष्ट्रीय जुलूस
प्रातः 9:00 अंतरराष्ट्रीय टिपिताका मंत्रोचारण समिति द्वारा उदघाटन समारोह
वेनेरबल संघ द्वारा 11:00 से 12:00 एवं 5.30 से 7:00 मंत्रोचारण
संध्या 7:30 से धममा वाचन

4. 17 नवम्बर श्रीमाँ का समाधि दिवस

श्रीमाँ के समाधि दिवस को आश्रम में शांति-दिवस के रूप में मनाया गया।

संध्या 6:45 पर समाधि क्षेत्र में अभिप्सा का प्रकाश का आयोजन

संध्या 7:00 से 7:30 मौन ध्यान

साप्ताहिक गतिविधियां

मंगलवार – डॉ अपर्णा रॉय द्वारा 'आंतरिक रूप से जीना' (Living Within का हिन्दी रूपान्तरण) पर संध्या 5.30 से 6.30 स्वाध्याय कक्षा

- श्रीप्रशांत खन्ना द्वारा 21 नवम्बर से प्रातः 11:30 से 12:30 Nourishing the Soul (आत्मा का पुष्टीकरण) का प्रारम्भ

वृहस्पतिवार – श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'सावित्री' पर संध्या 5.00 से 6.00
पुनः रविवार प्रातः 11.45 से 12.45

शुक्रवार – श्री प्रशांत खन्ना द्वारा 'गीता' पर संध्या 5.00 से 6.00
पुनः रविवार संध्या 5.00 से 6.00

(दिसम्बर से श्रीप्रशांत खन्ना की संध्या सत्र का समय आधा घंटा जल्दी कर दिया गया)

ध्यान कक्ष में संध्या 7 से 7.30 –

शुक्रवार - डॉ रमेश बिजलानी की वार्ता

शनिवार - डॉ अपर्णा रॉय की वार्ता

डॉ अपर्णा रॉय

डॉ रमेश बिजलानी

रविवारीय वार्ताएं – ध्यान कक्ष में – प्रातः 10 से 11.30

5 नवंबर - डॉ मिथु पाल - The Mother's Prayer for the Weak and the Fear-ful

भजन - डॉ मिथु पाल

12 नवंबर- Dr Aparna Roy - (अभीप्सा प्रबल एवं नेक इच्छा)

भजन - श्री प्रेम शीला

19 नवंबर – आचार्य नवनीत - Children, Family Life and Spirituality

भजन – सुश्री मोनिदीपा घोष

26 नवंबर – सुश्री मोनिका गुलाटी - Sadhana Through Human Love

भजन – सुश्री सौम्य नारायनन

10 दिसम्बर – डॉ मनुक गोयल – Concentration

भजन - सुश्री मोनिदिपा घोष

17 दिसम्बर – सुश्री मोनिका गुलाटी – Sadhana through Human Love

भजन – सुश्री रिचा शर्मा

24 दिसम्बर - डॉ मिथु पल - His Presence is Enough

भजन – डॉ मिथु पाल

डॉ मनुक गोयल

आचार्य नवनीत

डॉ मिथु पाल